मन्दिर प्रबन्धन सहायक

व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर 3.0

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

मन्दिर प्रबन्धन सहायक

प्रधान सम्पादक

प्रो. विरूपाक्ष वि. जड्डीपाल्

सचिव

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

लेखकगण

डॉ. गोविन्द प्रसाद शर्मा
एम०ए०, एम० फिल०, पी०एचडी०(शैक्षिक सहायक)

श्री त्रिभुवन शर्मा
एम०एससी०बीएड(शिक्षक विज्ञान)

प्रधान संयोजक

डॉ.अनूप कुमार मिश्र

सहायक निदेशक, प्रकाशन एवं शोध अनुभाग

आवरण एवं सज्जा : श्री शैलेन्द्र डोडिया

तकनीकी सहयोग : डॉ. अभय कुमार पाण्डेय

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जयिनी

ISBN :

मूल्य :

संस्करण :2024

प्रकाशित प्रति PDF

प्रकाशक : महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान

(शिक्षामन्त्रालय, भारत सरकार की स्वायत्तशासी संस्था)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Email: msrvvpujn@gmail.com, Web: msrvvp.ac.in

दूरभाष (0734) 2502255, 2502254

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पाठ्यचर्या एवं राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का उद्देश्य शिक्षण विकास एवं प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास कर रोजगार प्रदान करना है। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन सदैव शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर रहा है अतः आदर्श वेद विद्यालयों, पाठशालाओं एवं भारत के विद्यालयों में वैदिक कौशल विकास शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा अनेकानेक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षार्थियों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रहा है, जिससे शिक्षार्थी प्रशिक्षण के ज्ञानार्जन द्वारा स्वयं को अद्यतन एवं जागृत कर सकेंगे तथा इसके विषय ज्ञान का लाभ अपने दैनन्दिन जीवन के साथ-साथ आजीविका प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

मन्दिर प्रबन्धन सहायक पाठ्यपुस्तक में इकाईयों के विषयों को विविध आयामों के साथ सहज एवं प्रभावी तरह से प्रस्तुत किया गया है लेकिन फिर भी **कोई दोष हों तो हमें सूचित अवश्य** करें क्योंकि हमारा परम उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर वैदिक ज्ञान को कौशल विकास के माध्यम से जन-जन पहुँचाना है। अतः पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विद्वानों के समस्त सुझावों का स्वागत है।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

प्राक्कथन

वेद शिल्पशास्त्र के स्रोत हैं। देवताओं एवं मानवों को सदैव प्रसन्नता की अनुभूति हो और उनके मन आनन्द की अनभूति से प्रफुल्लित हो जाएँ, ऐसे स्थान को देव प्रासाद या मन्दिर कहते हैं। प्रसादों की उत्पत्ति का उल्लेख वेदों में प्राप्त होता है- जो परमात्मा संग्राम करने वाले वीरों को युद्ध में यथावत् नियोजित करता है तथा शारीरिक एवं आत्मिक दोनों प्रकार की पुष्टियों का सृजन करता है, मैं भक्त उस परमेश्वर की स्तुति तथा आवाहन करता हूँ। वह हमें कष्ट से मुक्त कराएँ अर्थात् परमात्मा की जो उपासना और प्रार्थना करता है उसकी परमात्मा रक्षा करते हैं।

यः संग्रामान्नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि।

स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः॥ (अथर्व4.24.7)

ऐश्वर्य चाहने वाले लोग जिस परमात्मा की प्रीति की कामना करते हैं, जिस दृष्टिवाले परमात्मा को दान स्थान, संग्राम में शूर लोग पुकारते हैं। जिसमें अन्न एवं पराक्रम प्राप्त होता है। वह हमें कष्ट से मुक्त कराते हैं।

यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ।

यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥(अथर्व4.24.5)

भारतीय स्थापत्य की नागर एवं द्राविड़ प्रमुख शैलियाँ हैं। इन दोनों के मिश्रण से वेसर शैली का निर्माण हुआ है। नागर शैली के मन्दिरों का निर्माण हिमालय से विन्ध्य पर्वत के मध्य के राज्यों में होता है या फिर निर्मित देवालय हैं। द्राविड़ शैली के प्रासाद या विमान दक्षिण भारत में होता है। वेसर शैली के विन्ध्य के मध्य राज्यों के साथ- साथ प्रायः सर्वत्र पाए जाते हैं।

शास्त्रकारों का मत है कि मन्दिर निर्माण करने से अक्ष्यलाभ प्राप्त होता है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने कहा कि जैसा फल यज्ञयागादि के करने से प्राप्त होता है वैसा ही फल देवप्रासाद के निर्माण करने से भी होता है। यथा-

इष्टापूर्तेन लभ्यन्ते ये लोकास्तान् बुभूषता।

देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र दृश्यते ।। (बृ.सं. प्रा.ल.अ. 2)

प्रथम इकाई में शिक्षार्थियों के लिए विभिन्न प्रकार की पूजा पद्धतियों का ज्ञान। द्वितीय इकाई में आगम ग्रन्थों का प्रारम्भिक परिज्ञान। तृतीय इकाई में मनोकामना पूर्ति हेतु विविध स्तोत्रों का परिचय। चतुर्थ इकाई में विविधता में एकता एवं उत्सव प्रिय भारत संस्कृति के व्रतों की प्रयोगविधि। पञ्चम इकाई में ज्ञान की प्रायोगिक समीक्षा करनेवाली अनेक उपनिषदों का परिचय। षष्ठ इकाई में मन्दिर में मन्दिर परिसर

का सौन्दर्यीकरण करने हेतु प्रायोगिक ज्ञान। सप्तम इकाई में देश की धर्मस्थली एवं श्रद्धा तथा वैदिक संस्कृति के रक्षक देवों के प्रसिद्ध मन्दिरों के मूर्तिशास्त्र का परिचय तथा अन्तिम इकाई में प्रसिद्ध मन्दिरों में एवं आयोजित होने वाले उत्सव एवं महोत्सवों की व्यवस्थाओं का प्रबन्धन करने में मन्दिर प्रबन्धन सहायक की यह पुस्तक अतीव सहायक होगी।

डॉ. गोविन्द प्रसाद शर्मा

महर्षिसान्दीपनिराष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठानम्, उज्जयिनी
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्

विषयानुक्रमणिका

इकाई	पृष्ठसंख्या
1. विविध उपचार पूजन पद्धति	
1.1पञ्चोपचार	
1.2षोडशोपचार	
1.3विष्णुत्रिंशोपचार एवं राजोपचार शास्त्रोक्त पूजाकर्म आदि	
2. आगम ग्रन्थों का सामान्य परिचय	
2.1वेद एवं वेदाङ्ग का सामान्य परिचय	
2.2रामायण	
2.3श्रीमद्भागवद्गीता	
2.4 रामचरित मानस का परिचय आदि।	
3. विविध स्तोत्रों का परिचय	
3.1गणपतिअथर्वशीर्ष	
3.2आदित्यहृदय	
3.3देव्यपराधक्षमापणस्तोत्र	
3.4शिवमहिम्नस्तोत्रम्	
3.5मधुराष्टकम्	
3.6सूर्य	
3.7गणपति	
3.8शनि	
3.9विष्णु	
3.10 शिव स्तोत्र	

4. विविध व्रतों का परिचय

4.1एकादशीव्रत

4.2प्रदोषव्रत

4.3श्रीरामनवमीव्रत

4.4सङ्कटचतुर्थीव्रत

4.5ऋषिपञ्चमीव्रत

4.6चैत्रनवरात्रिव्रत

4.7शरदीयनवरात्रिव्रत

4.8वटसावित्रीव्रत

5. उपनिषदों का सामान्य परिचय

6. मन्दिर परिसर का सौन्दर्यीकरण

6.1मन्दिर के आसपास फूल एवं फल वाले पौधें लगना

6.2लघुवाटिका का निर्माण करना

6.3पौधों की देखभाल करना

7. भारत के प्रसिद्ध मन्दिरों के मूर्तिशास्त्र का परिचय

7.1श्री महाकालेश्वर मन्दिर

7.2श्री जगन्नाथ मन्दिर

7.3तिरुपति बालाजी मन्दिर

7.4सोमनाथ मन्दिर

7.5कामाख्या माता मन्दिर

7.6नाथद्वारा मन्दिर

7.7काशी विश्वनाथ मन्दिर

7.8केदारनाथ मन्दिर

7.9बद्रीनाथ मन्दिर

7.10 मीनाक्षी सुन्दरेश्वर मन्दिर

7.11 संकटमोचन हनुमान मन्दिर (वाराणसी)

7.12 अक्षरधाम मन्दिर (दिल्ली)

7.13 लक्ष्मीनारायण मन्दिर (दिल्ली)

7.14 सबरीमाला मन्दिर

7.15 पद्मनाभस्वामी मन्दिर

7.16 कोणार्क का सूर्य मन्दिर (ओडिसा)

7.17 मंगलागौरी मन्दिर (बिहार)

7.18 **7.18. लिंगराज मंदिर**

7.19 विरूपाक्ष मंदिर

7.20 बृहदेश्वर मंदिर

7.21 एकाम्रनाथेश्वर (एकाम्रेश्वर) मंदिर

7.22 श्री महालक्ष्मी मंदिर (कोल्हापुर)

8. मन्दिरों में आयोजित होने वाले विविध उत्सवों का वर्णन

मन्दिरों में आयोजित होने वाले उत्सव एवं महोत्सवों का वर्णन तथा मन्दिर में आयोजित होने वाले विभिन्न उत्सवों का वार्षिक कैलेण्डर तैयार करना।

इकाई:1, विविध उपचार पूजन पद्धति

पञ्चोपचार, षोडशोपचार, विष्णुत्रिंशोपचार राजोपचार एवं मानसोपचार इत्यादि पूजा पद्धति जीवन जीने की पद्धति हैं। हमारे संस्कृति प्रधान भारत देश के शास्त्रों में चराचर जगत के मन, बुद्धि, आत्मादि इन्दियों के भजन-स्मरण, स्तोत्रपाठ, दान-पुण्य, हवन, पितृश्राद्ध ये अनुशासन के साधन हैं। ये मनुष्य के शरीर को आंतरिक और बाहरी दोनों तरह से संतुलन प्रदान करने की सैद्धातिक और वैज्ञानिक शक्ति हैं, इससे चराचर जगत की इन्दियों को पूर्वयोजना बनाने, कार्य करने और निरीक्षण करने की शक्ति का सर्वाङ्गीण विकास होता है।

पूजा हमारे नित्य कर्मों में से महत्त्वपूर्ण कर्म है। अतः भगवान का पूजन करने से पहले हमें नम्रता पूर्वक उनका अभिवादन करना चाहिए इसमें वैदिक मन्त्रो से सर्वप्रथम भगवान् पञ्चायतन देवताओं की पूजा आदि के साथ पुष्प, फलादि आदि से

1.1 **पञ्चोपचार**- 1. **गन्धम्**- सर्वप्रथम, देवता को दाएँ हाथ की अनामिका से गन्ध (चंदन) लगाकर उसी हाथ के अंगूठे और अनामिका से हल्दी-कुमकुम देवता के चरणों में अर्पित करें। ध्यातव्य- जिस देवता को हल्दी अर्पित कर सकते हैं उन्हीं को करें।

2. **पुष्पम्**- देवता को सर्वप्रथम देवानुसार पत्र चढ़ाकर ताजे डंठल देवता की ओर और पुष्पदल स्वयं की ओर करते हुए पुष्पोंका चरणों में चढ़ाने चाहिए।

3. **धूपम्**- देवता को दाएँ हाथ से धूप दिखाएँ और बाएँ हाथ से घंटी बजाना चाहिए।

4. **दीपम्**- देवता की दाएँ हाथ में दीप लेकर आरती करें और बाएँ हाथ से घंटी बजाएँ।

5. **नैवेद्यम्(प्रसाद)**- नैवेद्य पूर्व देवता से प्रार्थना कर उनके के समक्ष भूमि पर दाएँ से बाएँ जल से चौकोर मण्डल बनाकर उस पर नैवेद्य को रखें तत्पश्चात् नैवेद्य अर्पित करें।

1.2 षोडशोपचार- 1.आवाहनम् 2. आसनम् 3. पाद्यम् 4. अर्घ्यम् 5. आचमनम् 6. स्नानम् 7. वस्त्रम्. 8. यज्ञोपवीतम् 9. गन्धम् 10. पुष्पम् 11. धूपम् 12. दीपम् 13. नैवेद्यम् 14. ताम्बूलम् 15. प्रदक्षिणा 16. मन्त्रपुष्पाञ्जलि श्रद्धापूर्वक समर्पित करते हुए पूजा करनी चाहिए।

प्रथम उपचार- (आवाहन) देवताओं का आवाहन करें कि वे अपने अंग, परिवार, आयुध एवं शक्ति सहित पधारकर मूर्ति में प्रतिष्ठित होकर हमारी पूजा ग्रहण करें। देवता का आवाहन करें व उस समय हाथ में चंदन, अक्षत , पुष्प एवं तुलसीदल लेकर देवता का नाम लेते हुए नमः का उच्चारण करते देवता को चंदन, अक्षतादि अर्पित कर प्रणाम करें।

द्वितीय उपचार-(आसन) देवता को आसन पर विराजमान होने के लिए श्रद्धापूर्वक श्रीगणेशजी को दूर्वा, शिवजी को विल्व पत्र, श्रीविष्णु भगवान् को तुलसी या अक्षत अर्पित करें।

तृतीय उपचार- (पाद्य) देवता को पाद-प्रक्षालन के लिए उनके चरणों पर आचमनी से जल चढ़ाना चाहिए।

चतुर्थ उपचार- (अर्घ्य) देवता को हस्त-प्रक्षालन के लिए जल में चंदन, अक्षत एवं पुष्पादि सहित अर्घ्यप्रदान करें।

पञ्चम उपचार- (आचमन) देवता को मुख प्रक्षालन के लिए आचमनी में कर्पूर मिश्रित जल लेकर देवता को अर्पित करें।

षष्ठ उपचार- (स्नान) स्नान के लिए देवता पर जल अर्पित करें।तत्पश्चात् देवताओं को पंचामृत (दूध,दही,घृत,मधु और शर्करा से) क्रमानुसार स्नान करना चाहिए। एक

पदार्थ से स्नान कराने के पश्चात् दूसरे पदार्थ से स्नान करवाने से पूर्व जल का अभिषेक करें। पुनः देवता को चन्दन एवं कर्पूर से मिश्रित जल से स्नान करना चाहिए। आचमनी से जल चढ़ाकर सुगंधित द्रव्यों से मिश्रित जल से स्नान करवाएँ तत्पश्चात् आचमन के लिए जल प्रदान करें।

सप्तम उपचार –(वस्त्र) देवता को कपास के वस्त्र व उपवस्त्र अर्पित करें। तत्पश्चात् आचमनीय जल चढाएँ।

अष्टम उपचार- (यज्ञोपवीत)देवता को यज्ञोपवीत अर्पित करें। करें।तत्पश्चात् आचमनी से जल चढाएँ।

नवम उपचार-(गन्ध) देवता को चन्दन/अष्टगन्ध,अक्षत,कुङ्कुमादि सौभाग्यद्रव्य समर्पित करें।

दशम उपचार- (पुष्प) देवता को पुष्प/पुष्पमाला , बिल्व,तुलसी,दूर्वा,शमीपत्र आदि समर्पित करें।

एकादश उपचार- (धूप) देवता को अष्टाङ्ग धूप समर्पित करें।

द्वादश उपचार – (दीप) देवता को घृतयुक्त दीप समर्पित करें।

त्रयोदश उपचार- (नैवेद्य) देवता को पञ्चखाद्य/ पक्व नैवेद्य समर्पित करें।

चतुर्दश उपचार- (ताम्बूल) देवता को ताम्बूल समर्पण करें।

पञ्चदश उपचार- (प्रदक्षिणा)देवता को प्रदक्षिणा कर श्रद्धापूर्वक प्रणाम करें। ।

षोडश उपचार- देवता को कर्पूर आरती कर के मन्त्रपुष्पाञ्जलि समर्पित कर, पूजा के अन्तर्गत त्रुटियों के लिए देवता से क्षमा प्रार्थना करें।कर्म समाप्ति करने के बाद प्रसाद ग्रहण करें।

स्नानम् – ॐ तस्म्माद्यज्ज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्ज्यम्॥ पशूँस्ताँश्चक्क्रे व्वायुव्व्यानारण्ण्या ग्ग्राम्म्याश्चु ये॥ 31.6।।गङ्गा सरस्वतीरेवापयोष्णीनर्मदाजलैः। स्नापितोऽसि मया

देवह्यतः शान्ति कुरुष्व मे। ॐ भूर्भुवः स्वः श्री शिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः स्नानं समर्पयामि।। एकतन्त्रेण पञ्चामृतस्नानम् -

ॐ पञ्च नुद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः॥ सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेभवत्सरित् ॥34.11

पयो दधि घृतं चैव मधुं च शर्करायुतम्। पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि ।। अथवा पृथक्पृथक्तन्त्रेण पञ्चामृतस्नानम् । यथा-

पयःस्नानम् - ॐ पयः पृथिव्याम्पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः॥ पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥18.36।।

कामधेनुसमुद्भूतं सर्वेषां जीवनं परम्। पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम् ।।ॐभूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः पयःस्नानं समर्पयामि ।। पयः स्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।। शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि ।।

दधिस्नानम् - ॐ दधिक्क्राव्णोऽअकारिषञ्जिष्णोरश्वस्य वाजिनः॥ सुरभि नो मुखा करत्प्र णऽआयूंषि तारिषत्।।23.32।।ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः दधिस्नानं समर्पयामि ।। दधिस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि ।।

घृतस्नानम् - ॐ घृतम्मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम॥ अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतंवृषभ वक्षि हव्यम्।।17.88।।

नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसन्तोषकारकम्।

घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतन देवताभ्यो नमः घृतस्नानं समर्पयामि। घृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि । शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि। ।।

मधुस्नानम् – ॐमधु व्वाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः॥ माद्ध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः॥ ॥13.28॥

मधुमान्नो व्वनस्पतिर्म्मधुमाँ2ऽ अस्तु सूर्य्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥13.29॥

पुष्परेणुसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु।

तेजः पुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

तरुपुष्पसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु। तेजःपुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥ ॐभूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः मधुस्नानं समर्पयामि। मधुस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।। शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि ॥

शर्करास्नानम् – ॐ अपारसंस्य ७समाहितम् ॥ अपा ६सूर्य्ये सन्तं ६रसमुद्वयस ७ यो रसस्तँव्वो गृह्णाम्म्युत्तममुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टङ्गृह्णाम्म्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्।।9.3।।

इक्षुरससमुद्भूतां शर्करां पुष्टिदां शुभाम्। मलापहारिकां दिव्यां स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः शर्करास्नानं समर्पयामि ।। शर्करास्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि॥ शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि ।।

गन्धोदकस्नानम्- ॐ गन्धर्व्वस्त्वा व्विश्वावसुः परिदधातु व्विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ऽईडितः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो व्विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तान्ध्रुवेण धर्म्मणा व्विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः।।2.3।।

मलयाचलसम्भूतं चन्दनागरुसम्भवम्। चन्दनं देवदेवेश स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः गन्धोदकस्नानं समर्पयामि॥ गन्धोदकस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।। शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि ।।

उद्वर्तनस्नानम्- ॐअ॒६शुना॑ तेऽअ॒६शुः पृच्यतां॒ परु॑षा॒ परुः। ग॒न्धस्ते॒ सोम॑मवतु॒ मदा॑य॒ रसो॒ऽअच्यु॑तः॥2.27॥

नानासुगन्धिद्रव्यं च चन्दनं रजनीयुतम्। उद्धूतेनं मया दत्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।ॐ भूर्भुवःस्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः उद्वर्तनस्नानं समर्पयामि।। उद्वर्तनस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।। शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि।।

पञ्चामृतादिस्नानाङ्गपूजा - ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः वस्त्रोपवस्त्रार्थे अक्षतान्समर्पयामि ।। यज्ञोपवीतार्थे अक्षतान्समर्पयामि ।। गन्धं समर्पयामि।। अक्षतान् समर्पयामि।। पुष्पाणि समर्पयामि।। नानापरिमलसौभाग्यद्रव्याणि समर्पयामि।। धूपम् आघ्रापयामि।। दीपं दर्शयामि।। शर्करोपहार नैवेद्यम् -ॐप्राणाय स्वाहा। ॐअपानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा। ॐसमानाय स्वाहा। ॐउदानाय स्वाहा ।। नैवेद्यं समर्पयामि ।। नैवेद्यमध्ये पानीयं समर्पयामि नैवेद्यान्ते हस्तप्रक्षालनं मुखप्रक्षालनं च समर्पयामि ।।

करोद्वर्तनार्थे चन्दनं समर्पयामि। मुखवासार्थे पूगीफल ताम्बूलं च समर्पयामि।। हिरण्यमुद्रादक्षिणां समर्पयामि। कर्पूरारार्तिक्यं दर्शयामि।। प्रदक्षिणां समर्पयामि।। मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि| प्रार्थनापूर्वकं नमस्करोमि॥ अनेन यथाशक्त्या ध्यानादिस्नानाङ्गपूर्वाराधनकृतेन श्रीशिवपञ्चायतनदेवताः प्रीयन्तां न मम।। निर्माल्यम् उत्तरे विसृज्य गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्प्य शालग्रामोपरि तुलसीदलं तथा शिवोपरि बिल्वपत्रं समर्प्य धारापात्रं गन्धादिभिः सम्पूज्य पुरुषसूक्तेन गन्धोदकेन देवानां मूर्ध्नि अभिषेकस्नानं कार्यम्।

ॐ स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः स॒हस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात् ॥ स भूमि॑६ स॒र्व्वत॑ स्पृ॒त्वात्त्य॑तिष्ठद्दशाङ्गु॒लम् ॥ १॥ पुरु॑ष ए॒वेद६ सर्व्वं॒य्यद्भू॒तँय्यच्च॒ भा॒व्व्य॒म् ॥ उ॒ताम॑तृ॒त्त्वस्येशा॑नो॒ यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति ॥ २ ॥
ए॒तावा॑नस्य महि॒मातो॒ ज्ज्यायाँ॑श्च॒ पूरु॑षः॥ पादो॑स्य॒ व्विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृत॑न्दि॒वि ॥ ३ ॥ ॥ त्रि॒पादू॒र्द्ध्वः ॥ त्रि॒पादू॒र्द्ध्वऽउदै॒त्पुरु॑षः॒पादो॑स्ये॒हाभ॑व॒ त्पुन॑ः ॥ तत॒ो व्विष्व॒ङ्व्यक्क्रामत्त्साशनानश॒नेऽअ॒भि ॥ ४॥ ॥ ततो॑ व्वि॒राट् ॥ ततो॑ व्वि॒राड॑जायत

व्विराजोऽअधि पूरुषः ॥ स जातोऽअत्त्यरिच्यत पुश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥ ॥
तस्माद्युज्ज्ञात् ॥ तस्माद्युज्ज्ञात्त्सर्व्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्ज्यम् ॥ पुशूँस्ताँश्चक्रे
व्वायुव्व्यानारण्ण्या ग्ग्राम्म्याश्च ये ॥ ६ ॥ ॥ तस्माद्युज्ज्ञात्
॥ तस्माद्युज्ज्ञात्त्सर्व्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे॥ छन्दाᳬसि जज्ञिरे
तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥ ॥ तस्मादश्श्वा ॥ तस्मादश्श्वाऽअजायन्त ये
के चोभुयादतः ॥ गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्ज्जाताऽअजावयः ॥ ८ ॥ ॥
तँय्युज्ज्ञम् ॥ तँय्युज्ज्ञम्बुर्हिषि प्प्रौक्क्षन्पुरुषञ्जातमग्ग्रतः ॥ तेन देवाऽअयजन्त
साद्ध्याऽऋषयश्च ये ॥९॥ ॥ यत्त्पुरुषम् ॥ यत्त्पुरुषंव्व्यदधुः कतिधा व्व्यकल्प्पयन् ॥
मुखङ्किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादाऽउच्च्येते ॥ १०॥ ॥ ब्राह्म्मणोस्य॥ ब्राह्म्मणोस्य
मुखमासीद्बाहू राजुन्न्यः कृतः ॥ ऊरू तदस्य यद्वैश्श्यः पुद्भ्याᳬ शूद्द्रोऽअजायत ॥
११ ॥
॥ चन्द्रमामनसः ॥ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्क्षोः सूर्य्योऽअजायत ॥ श्श्रोत्राद्वायुश्च
प्प्राणश्च मुखादुग्ग्निरजायत ॥१२॥ ॥ नाब्भ्याऽआसीत् ॥ नाब्भ्याऽआसीदुन्तरिक्क्षᳬ
शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ॥ पुद्भ्याम्भूमिर्द्दिशः श्श्रोत्रात्तथा लोकाँ२॥ऽअकल्प्पयन् ॥ १३
॥ ॥ यत्त्पुरुषेण॥ यत्त्पुरुषेण हविषा देवा यज्ज्ञमतन्न्वत ॥
व्वसन्तोस्यासीदाज्ज्यङ्ग्ग्रीष्म्मऽइद्ध्मः शरद्धविः ॥ १४ ॥ ॥ सुप्तास्यासन् ॥
सुप्तास्यासन्परिधयुस्त्रिः सुप्त सुमिधः कृताः ॥ देवा
यद्युज्ज्ञन्तन्न्वानाऽअबद्ध्नन्पुरुषम्पुशुम्॥ १५॥
॥ युज्ज्ञेनयुज्ज्ञम् ॥ युज्ज्ञेन युज्ज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्प्रथुमान्न्यासन् ॥ ते ह
नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्व्वे साद्ध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥ [१६-१] ॥ अद्भ्यः
सम्भृतः ॥ अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्व्यै रसाच्च व्विश्श्वकर्म्मणः समं- वर्त्तताग्ग्रे ॥ तस्य
त्त्वष्टा व्विदधद्रूपमेति तन्मर्त्त्यस्य देवुत्त्वमाजानुमग्ग्रे ॥ १७ ॥ ॥ व्वेदाहम् ॥
व्वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्त्यवर्ण्णन्तमसः पुरस्तात् ॥ तमेव व्विदित्त्वाति मृत्त्युमेति
नान्न्यः पन्था व्विद्युतेयनाय ॥ १८ ॥

(18-31.1एवमभिषिच्य शङ्खोदकेन शालग्रामं स्नापयेत् - इदं विष्णुर्विचक्रमे श्रेधा निदधे पदम्।। सर्मूढमस्य पा सुरे स्वाहा॥ 5 ॥ पश्चात्पश्चायतनदेवानामुपरि शान्त्यभिषेकं कुर्यात् -

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षुशान्तिः पृथिवी शान्तिरापुः शान्तिरोषधयुः शान्तिः ॥ वनुस्पतयुः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वुःशान्तिः शान्तिरेव शान्तिःसा मा शान्तिरेधि॥36.17 ॥ यतोयतः सुमीहसे ततो नोऽअभयङ्कुरु॥ शन्नः कुरु प्रजाभ्योभयन्नः पुशुभ्यः॥ 22 ॥ ।।36.22।।सुशान्तिर्भवतु।।

॥ 33 ॥ सर्वेषां वाऽएष वेदानाᳯरसो यत्साम सर्वेषामेवैनमेतद्वेदानाᳯरसेनाभिषिञ्चति ।। ब्रा0 मं0 ।। ॐशान्तिःशान्तिःशान्तिः। सुशान्तिर्भवतु सर्वारिष्टशान्तिर्भवतु। अमृताभिषेकोऽस्तु। ॐभूर्भुवःस्वः श्रीशिवपश्चायतनदेवताभ्यो नमः अभिषेकस्नानं समर्पयामि।

शुद्धोदकस्नानम् - ॐ शुद्धवालः सुर्वशुद्धवालो मणिवालुस्तऽआश्विनाः श्येतः श्येताक्षोरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कुर्णा यामाऽ अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जुन्याः॥ ।।34.3।।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धुकावेरि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवःस्वः श्रीशिवपश्चायतनदेवताभ्यो नम शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि।पश्चाद्देवतीर्थं धृत्वा शिवस्यासनार्थं बिल्वपत्रं शालग्रामस्यासनार्थं तुलसीदलं च निधाय देवान् वस्त्रेण प्रमृज्य गन्धानुलेपनपूर्वकं स्वस्थाने स्थापयेत् ।।

वस्त्रम्:- ॐ तस्म्माद्यात्सर्वहुत ऽऋच..॥ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म्म वरूथमासदुत्स्वः॥ वासोऽअग्ने विश्वरूपुसँव्ययस्व विभावसो ।।11.40।। सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जा निवारणे।। मयोपपादिते तुभ्यं गृह्येतां वाससी त्वया।। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपश्चायतनदेवताभ्यो नमः वस्त्रं (वस्त्राभावेऽक्षतान्) समर्पयामि। वस्त्रान्ते आचमनीयं समर्पयामि।। सोत्तरीयं यज्ञोपवीतम् ॐ तस्म्मादश्वाऽअजायन्त ये के

चोभुयादंतः ॥ गावो ह जज्ञिरे तस्म्मात्तस्म्मांज्जाताऽअंजावयंः ॥ 8 ॥ नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।सोत्तरीयं ब्रह्मसूत्रं गृहाण परमेश्वर।। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः सोत्तरीयं यज्ञोपवीतं (तदभावेऽक्षतान्) समर्पयामि। तदन्ते आचमनीयं समर्पयामि ।।

गन्धम् -ॐ त्वाङ्गन्धर्वाऽअंखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वाम्बृहस्पतिंः ॥ त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान्यक्ष्मांदमुच्यत ।12.98।।

श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्। विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः गन्धं समर्पयामि ॥

अक्षताः- ॐ अक्षन्नमींमदन्त ह्यवं प्रियाऽअंधूषत। अस्तोंषत स्वभांनवो विप्रा नविंष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरीं।।3.51।।

अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः। मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर।। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः अक्षतान्समर्पयामि ।

पुष्पाणि- ॐ यत्पुरुषं..।।ॐ ओषंधीः प्रतिंमोदद्ध्वम्पुष्प्वंवतीः प्रसूवंरीः ॥ अश्श्वांऽइव सजित्त्वंरीर्व्वीरुधंः पारयिष्ण्वः ।।12.77।। माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो। मयाऽनीतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम्।। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः पुष्पाणि समर्पयामि।। शङ्कराय बिल्वदलार्पणम् – ॐ ॥ शिवोभंव ॥ शिवो भंव प्रजाभ्यो मानुंषीभ्यस्त्वमंङ्गिरः॥ मा द्यावांपृथिवीऽअभिशोंचीर्म्मान्तरिंक्षम्मा व्वनस्पतींन्।।11.45।।

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रयायुधम्। त्रिजन्मपापसंहारमेक बिल्वं शिवार्पणम् । ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः बिल्वपत्राणि समर्पयामि।

विष्णवे तुलसीदलार्पणम् – ॐ व्विष्ण्णोःकर्म्माणि पश्श्यत यतों व्रतानिं पस्पुशे। इन्द्रंस्य युज्यः सखां।।6.4।। तुलसी हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम् । भवमोक्षप्रदां

तुभ्यमर्षयामि हरिप्रियाम्। ॐ भूर्भुवःस्वः श्रीमहाविष्णवे नमः तुलसीदलानि समर्पयामि ।

सूर्याय पुष्पार्पणम् - ॐ सुविता त्त्वा सुवानाᳬसोमो ७सुवतामुग्ग्निर्गृहपतीना ७ व्वनुस्प्पतीनाम्॥ बृहुस्प्पतिर्व्वाचऽइन्द्रो ज्ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुब्भ्यो मित्रः सुत्त्यो व्वरुणो धर्म्मपतीनाम् ॥9.39।।

भानो दिवाकरादित्य मार्तण्ड जगतांपते। अपांनिषे जगद्रक्ष भूतभावन भास्कर॥ प्रणतातिहरादित्य विश्वचिंतामणे विभो। विष्णो हंसादिभूतेश गृहाण परमेश्वर। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीसूर्याय नमः पुष्पाणि समर्पयामि ॥

गणेशाय दूर्वाङ्कुरार्पणम् - ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवा नो दूर्व्वे प्प्रतनु सहस्रेण शतेन च॥13.20।। विष्ण्वादिसर्वदेवानां दूर्वा वै प्रीतिदा सदा। वंशवृद्धिकरी नित्यं गणेशायार्पयाम्यहम्।। ॐभूर्भुवः स्वः श्रीगणेशाय नमः दुर्वाङ्कुररान्समर्पयामि।।

देव्यै पुष्पार्पणम् - ॐ ॥समक्ख्ये॥ समक्ख्ये देव्व्या धिया सन्दक्षिणयोरुचक्षसा। मा मुऽआयुः प्प्रमोषीर्म्मोऽअहन्तव व्वीरँव्विदेय तव देवि सन्दृशि॥4.23।। सेवन्तिकाबकुलचम्पकपाटलाब्जैःपुन्नागजातिकरवीररसालपुष्पैः। बिल्वप्रवालतुलसीदलमालतीभिस्त्वां पूजयामि जगदीश्वरि मे प्रसीद । ॐभूर्भुवः स्वः श्रीदेव्यै नमः पुष्पाणि समर्पयामि ।।

सौभाग्यद्रव्याणि- ॐ अहिरिव भोगैः पर्य्येति बाहुञ्ज्यायां हेतिम्परिबाधमानः ॥ हस्तुग्घ्नो व्विश्श्वा व्वयुनानि व्विद्वान्पुमान्पुमा७सम्परिपातु व्विश्श्वतः ॥29.51।।अबीरं च गुलालं च हरिद्रादिसमन्वितम् । नानापरिमलद्रव्यं च गृहाण परमेश्वर।। ॐभूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः सौभाग्यद्रव्याणि समर्पयामि ।

धूपम् – ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या॰ शूद्रोऽअजायत॥ 31.11।।ॐ धूरसि॥ धूरसि धूर्व्व धूर्व्वन्तन्धूर्व्व तँय्योस्मान्धूर्व्वति तन्धूर्व्व यव्वयन्धूर्व्वाम॰ ॥ देवानामसि वह्निन्नतमसस्निन्तमम्पप्रितमञ्जुष्टतमन्देवहूतमम् ६।।1.8 ।।

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। ॐ भूर्भुःस्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः धूपमाघ्रापयामि।।

दीपम्- ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो॰ सूर्य्योऽअजायत॥ श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥ 12॥ साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया। दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह। ॐभूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः दीपं दर्शयामि।

नैवेद्यम् - ॐ नाभ्याऽआसीत्॥ नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षशीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ६ मपद्भ्याम्भू ॥ िर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ2॥ऽअकल्प्पयन्।।31.13।। ॐ अन्नपतेन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः॥ प्रप्र दातारन्तारिषऽऊर्जन्नो धेहि िद्वपदे चतुष्पदे॥11.83।। अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्। भक्ष्य भोज्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्।। गायत्रीमन्त्रेण तुलसीदलेन सम्प्रोक्ष्य तत्तुलसीदलं नैवेद्योपरि निधाय अत्रेण संरक्ष्य धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य ग्रासमुद्रया ॐप्राणाय स्वाहा। ॐअपानाय स्वाहा। ॐव्यानाय स्वाहा।ॐउदानाय स्वाहा। ॐसमानाय स्वाहा । ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतन देवताभ्यो नमः नैवेद्यं समर्पयामि। पूर्वापोशनं समर्पयामि। नैवेद्यमध्ये पानीयम्-एलोशीरलवङ्गादि कर्पूरपरिवासितम्।प्राशनार्थं कृतं तोयं गृहाण परमेश्वर।।ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः मध्ये पानीयं समर्पयामि। उत्तरापोशनं समर्पयामि। हस्तप्रक्षालनं समर्पयामि । मुखप्रक्षालनं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। करोद्वर्तनार्थे गन्धं समर्पयामि। मुखवासार्थे ताम्बूलम् –

ॐ उत स्म्मास्य द्रवतस्तुरण्ण्यतः पर्ण्णन्न वेरनुवाति प्प्रगर्द्धिनः ॥ श्येनस्येव ध्रजतोऽअङ्कसम्प्परि दधिक्क्राव्ण्णः सहोर्ज्जा तरित्रतः स्वाहा॥9.15।। पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्। एलादिचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतन देवताभ्यो नमः ताम्बूलं समर्पयामि।

फलम् – ॐ याः फलिनीर्य्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः॥ बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वहंसः॥12.89।। इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तत्र। तेन मे सुफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि। ॐभूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतन देवताभ्यो नमः फलं समर्पयामि।

दक्षिणा - ॐ यद्दत्तँय्यत्परादानँय्यत्पूर्त्तँय्याश्च दक्षिणाः॥ तदग्निर्वैश्वकर्म्मणः स्वर्द्देवेषु नो दधत्॥ ॥18.64।। हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेम बीजं विभावसोः। अर्प्यते देवदेवेश ह्यतः शान्ति प्रयच्छ मे परमेश्वर।। ॐ भूर्भुवःस्वः श्रीशिवपञ्चायतन देवताभ्यो नमःसुवर्णपुष्पदक्षिणां समर्पयामि।। कर्पूरारातिक्यम्- निराजनीं प्रज्वाल्य ज्वालामालिन्यै नमः गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि। इति संपूज्यार्तिक्यं कुर्यात् ।।

ॐ आरात्रि ॥ आ रात्रि पार्थिवꣳरजः पितुरप्रायि धामभिः ॥ दिवः सदांसि बृहती वितिष्ठसऽआ त्वेषंवर्त्तते तमः ॥34.32॥

।। कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् । सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ।।मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः।। मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनो हरिः॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके॥ शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते। कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं च प्रदीपितम् ।आरार्तिक्यमहं कुर्वे पश्य मे वरदोत्तम ।। ॐ भूर्भुवः स्वःश्रीशिवपञ्चायतन देवताभ्यो नमः कर्पूरार्तिक्यं दर्शयामि॥ प्रदक्षिणा- ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन् पुरुषं पशुम्॥31.15।। यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ॥ ॐभूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतन देवताभ्यो नमः प्रदक्षिणां करोमि।। मन्त्रपुष्पाञ्जलिः-अञ्जलौ पुष्पाण्यादाय तिष्ठन् ।। हरि॥ गुणानान्त्वा॥ गुणानान्त्वा गणपतिहवामहे हवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिं प्रियपतिहवामहे प्रियाणान्त्वा वसो मम॥ आहमजानि गर्ब्भधमा त्वमजासि गर्ब्भधम्॥॥23.19 ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ॥ इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्वलोकम्मऽइषाण॥31.22॥ ॐ अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके

न माँ नयति कश्चन॥ ससंस्त्यश्श्वुक॒ सुभंद्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम्॥23.18॥ ॐ यम्पंरिधिम्पर्य्यधंत्थाऽअग्ग्ने देव पणिभिंर्गुह्यमानः। तन्तंऽएतमनु जोषम्भराम्येष नेत्त्वदंपचेतयांताऽअग्ग्ने॒ प्रियम्पाथोपींतम्॥17॥ ॥2.17॥ ॐ सुस्त्रवभांगा स्त्थेषा बृहन्तं÷ प्रस्तरेष्ठा॒ पंरिधेयांश्च देवा॒। इमाँवाचंमभि विश्श्वे गृणन्तंऽआसद्यास्मिन्न्बर्हिषि मादयद्ध्वस्वाहा वाट् ॥21.18॥ ॐ मूर्द्धानंन्दिवोऽअंरतिम्पृंथिव्या वैश्श्वानरमृतऽआजातमग्निम् । कवि सुम्म्राजमतिंथिञ्जनांनामासन्ना पात्रंञ्जनयन्त देवा॒॥7.24॥ ॐ प्रोह्यमाणः सोमं÷ ॥ प्रोह्यमाणःसोमऽआगंतो वरुंणऽआसन्द्यामासंन्नोग्ग्निराग्ग्नीद्ध्रऽइन्द्रो हविर्द्धनेथर्व्वोपाव ह्रियमाणो विश्श्वे देवा॒॥8.56॥ ॐ विश्श्वे देवाऽअंशुषु न्न्युप्तो विष्णुंराप्प्रीतपाऽआप्प्याय्यमानो यम॒ सूयमानो विष्णुं÷ सम्भ्रियमाणो वायु॒ पूयमानः शुक्र॒ पूत॒ शुक्र॒ क्क्षीरश्श्रीर्म्मन्थी संक्तुश्श्रीर्व्विश्श्वे देवा॒ ॥8.57॥ ॐ अयन्ते योनिंर्ऋत्त्वियो यतो जातोऽअरोंचथाः। तञ्जानन्नंग्ग्नऽआरोहाथां नो वर्द्धया रयिम् ॥3.14॥ ॐ अग्ग्ने त्त्वसुमंन्दिषीमहि। रक्षां णोऽअप्प्रंयुच्छन्न्प्रबुधे सुजांगृहि व्वय नपुनंस्कृधि॥4.14॥ ॐ अयमिह प्रंथमो धांयि धातृभिर्होता यजिंष्ठोऽअद्ध्वरेष्ष्वीड्यं÷। यमप्प्नंवानो भृगंवो विरुरुचुर्व्वनेंषु चित्रंव्विभ्वँव्विशेविंशे॥3.15॥ ॐ समिंद्धेऽअग्ग्नावधिं मामहानऽउक्क्थपंत्रऽईड्यो गृभीत॒ ॥ तुप्तङ्घर्म्मम्पंरिगृह्यांयजन्तोर्ज्जा यद्यज्ज्ञमयंजन्त देवा॒॥17.55॥ हरिः ॐ दृशानो रुक्क्मऽउर्व्या व्व्यंद्यौद्दुर्म्मर्षमायुं÷ श्रिये रुंचान॒॥ अग्निरमृतोंऽअभवद्वयोभिर्य्यदेंनन्द्यौरजंनयत्सुरेताः ॥ ॥12.1॥ ॐ यस्येमे हिमवन्तो महित्त्वा यस्यं समुद्र देवायं प्प्रदिशो यस्य बाहू कस्म्मै रसयां सहाहु॒॥ यस्येमा॒ हविषां विधेम ॥25. ॥12ॐ यऽआंत्मदा बंलदा यस्य विश्श्वंऽउपासंते प्प्रशिषँय्यस्यं देवा॒ ॥ यस्यं छायाऽमृतँय्यस्यं मृत्यु॒ कस्म्मै देवायं हविषां विधेम॥25.13॥ ॥ सुगव्व्यंन्नः ॥ सुगव्व्यंन्नो वाजी स्वश्श्व्यंम्पुरुयिम् ॥ ॥ऽउत विंश्श्वापुषं2स॒ पुत्राँ अनागास्त्वन्नोऽअदिंतिः कृणोतु क्क्षत्रन्नोऽअश्श्वो वनता हविष्म्मांन् ॥25.45॥ ॐ इमा नु कम्भुवंना सीषधामेन्द्रंश्च विश्श्वे च देवा॒ ॥ आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिंरस्म्मब्भ्यंम्भेषजा कंरत् ॥ यज्ज्ञश्च नस्तन्न्वञ्च प्प्रजाश्चांदित्यैरिन्द्रं÷ सह

सौंषधाति॥25.46॥ ॐ अवंभृथ निचुम्पुण निचेरुरंसि निचुम्पुणः॥ अवं देवैर्द्देवकृंतुमेनोंयासिषुमव मर्त्यैर्म्मर्त्त्यंकृतम्पुरुराव्णों देव रिषस्प्पांहि ॥ देवानां ७ समिदंसि॥8.27॥ ॐ अपाम्पृष्ठमंसि योनिंरग्ग्नेः संमुद्रमुभितः पिन्न्वंमानम्॥ व्वर्द्धमानो महाँ2॥ऽआ च पुष्क्रंरे दिवो मात्रंया व्वरिम्म्णा प्प्रंथस्व॥9.29॥ ॐ सद्यो जातो व्व्यंमिमीत यज्ज्ञमुग्ग्निर्द्देवानांमभवत्पुरोगाः॥ अस्य होतुंः प्प्रदिश्श्यृतस्यं व्वाचि स्वाहांकृत देवाःहविरंदन्तु ६॥29.36॥ ॐ अस्म्मे रुद्रा मेहना पर्व्वतासो व्वृत्रहत्त्ये भरंहूतौ सजोषाः॥ यः श ॥ऽअंवन्तु2ज्ज्येष्ठाऽअस्म्माँऽइन्द्रंवते धार्यि पुज्ज्रस्तु संते६ देवाः॥33.50॥ ॐनुहि स्प्पशमविंदन्नन्न्यम स्म्माद्वैंश्श्वानुरात्त्पुंरऽएतारंमुग्ग्नेः॥ एमेंनमवृधन्नमृताऽअमंर्त्त्यंव्वैश्श्वानुरङ्कैंत्रंजित्त्यायदेवाः ।।33.60॥ यज्ञेनं यज्ञमंयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यांसन्। ते ह नाकं महिमानंः सचन्त यत्र पूर्व्वे साध्याः सन्तिं देवाः॥16॥ ॐ राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने । नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान्कामकामाय मह्यम्। कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु । कुबेराय वैश्रवणाय। महाराजाय नमः।। ॐ स्वस्ति। साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायीस्यात्सार्वभौमःसार्वायुषऽआन्तादापरार्धात्। पृथिव्यै समुद्रपर्यन्तायाऽएकरालिति।तदप्येष श्लोकोभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्या वसन्गृहे। आविक्षितस्य कामप्रेर्श्वेदेवाः सभासद इति।। ॐ ॥ व्विश्श्वतंश्चक्षुरुत ॥ व्विश्श्वतंश्चक्षुरुत व्विश्श्वतोंमुखो व्विश्श्वतोंबाहुरुत व्विश्श्वतंस्प्पात् ॥ सम्बाहुब्भ्यान्धमंति सम्पतंत्रैद्यावाभूमीं जुनयंन्देवऽएकंः॥19॥ ॐभूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतन देवताभ्यो नमः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।।

प्रार्थनापूर्वक नमस्कारः- ॐ यत्पुरुंषेण हविषां देवा यज्ज्ञमतंन्वत ॥ व्वसन्तोंस्यासीदाज्ज्यंङ्ग्रीष्म्मऽइद्ध्मः शरद्धविः॥31.14॥ गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं गजेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम्।। भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्गं भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम्॥1॥ योगेन सिद्धविबुधैः परिभाव्यमानं लक्ष्म्यालयं तुलसिकाचितभक्तभृङ्गम्।। प्रोत्तुङ्गरक्तन खराङ्गुलिपत्रचित्रं गङ्गारसं हरिपदाम्बुजमाश्रयेऽहम् ।।2।। उद्य गिरिमुपेतं

भास्करं पद्महस्तं निखिलभुवननेत्रं रत्नरत्नोपगेयस् ।। तिमिरकरिमृगेन्द्रं बोधकं पद्मिनीनां सुरवरमभिवन्दे सुन्दरं विश्ववन्द्यम् ॥3॥ निजैरौषधीस्तर्पयन्तं कराद्यै सुरौघान्कलाभिः सुधास्रावि- णीभिः।। दिनेशांशुसन्तापहारं द्विजेशं शशाङ्कस्वरूपं गणेशं नमामः॥4॥ स्वभक्तवत्सलेऽनघे सदापवर्गभोगदे दरिद्रदुःखहारिणि त्रिलोकशङ्करीश्वरि ।। भवानि भीम अम्बिके प्रचण्डतेजउज्ज्वले भुजाकलापमण्डिते नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥5॥ ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतन देवताभ्यो नमः प्रार्थनापूर्वकनमस्कारं समर्पयामि ।। पूजितदेवतानां यथाशक्ति जपं कृत्वा।। राजोपचाराः - छत्रं च चामरं चैव व्यजनं दर्पणं तथा। पादुकादि च सर्वाणि गृह्यन्तां परमेश्वर।। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः राजोपचारान्समर्पयामि।। विशेषार्घः- अर्धपात्रे जलं प्रपूर्य गन्धाक्षतपुष्पसहितं नारिकेलं पूगीफलं वा धृत्वा रक्ष रक्ष महादेव रक्ष त्रैलोक्यरक्षक। भक्तानामभयंकर्ता त्राता भव भवार्णवात् ।। वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद। अनेन सफलार्घेण फलदोऽस्तु सदा मम। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतन देवताभ्यो नमः विशेषार्घ्यं समर्पयामि।

क्षमापनम्-आवाहनं न जानामि न जानामि तवार्चनम्। पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥1॥ अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम। तस्मात्कारुण्यभावेन रक्षस्व परमेश्वर ॥2॥ भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।। त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं मम ।।3।।मत्समो नास्ति पापिष्ठस्त्वत्समो नास्तिपापहा । इति मत्वा दयासिन्धो यथेच्छसि तथा कुरु ।।4।। गतं पापं गतं दुःखं गतं दारिद्र्यमेव च ॥ आगता सुखसंपत्तिः पुण्योऽहं तव दर्शनात् ॥5॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।यत्पूजितं मया देव परिपूर्ण तदस्तु मे।।6।। यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीन च यद्भवेत्।। तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर।।7।। अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर॥

अर्पणम्-अनेन आवाहन आसन पाद्यार्घाचमनीयस्नानवस्त्रोपवीतगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलदक्षिणाप्रदक्षिणामन्त्रपुष्प नमस्काररूपैः षोडशोपचारैः अन्योपचारैश्च यथाज्ञानेन यथामिलितोपचारद्रव्यैः कृतपूजनेन

श्रीशिवपञ्चायतनदेवताः प्रीयन्तां न मम। ॐतत्सब्रह्मार्पणमस्तु। यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।। ॐविष्णवे नमो। विष्णवे नमो। विष्णवे नमः॥ जलपूरितशङ्खभ्रामणम् - शङ्खमध्ये स्थितं तोयं भ्रामितं केशवोपरि॥ अङ्गलग्न मनुष्याणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति। इत्युक्त्वा शङ्खं देवोपरि भ्रामयित्वा तस्योदकेन स्वशरीरं मार्जयेत्।

तीर्थग्रहणम्- अकालमृत्युहरणं ब्रह्महत्यादिनाशनम्। देवपादोदकं पुण्यं पिबाम्यायुर्विवर्धनम्॥ इति मन्त्रेण देवतीर्थं पीत्वा देवनिर्माल्यं गृहीत्वा दक्षिणनासावघ्राणं कृत्वा शिरसि धारयेत् ॥

1.3 त्रिंशोपचार-

विष्णुत्रिंशोपचार- ध्यानम्- सुरकदम्बकैः प्रश्रयेण वै नियतसेवितं गोललोत्सयम्।। किरिटकुण्डलं पीतजाम्बरं खलनिषूदनं चिन्तये विभुम्॥1॥

आवाहनम्-खगपवाहनं क्षीरजाप्रियं भवभयाहं भुक्तिमुक्तिदम्।। सुरपतिं जगन्नाथमीश्वरं कमलं भासमावाहयाम्यहम्॥2॥

आसनम्-विधिमुस्वापरैर्नम्रमूर्तिभिः प्रणतसन्धि दुर्धरादिमत्॥ वरमणिप्रभाभासुरं नवं जनप गृह्यतां स्वर्णमासनम्॥3॥

पाद्यम्- कुसुमवासितं गन्धविस्तृतं शुलिनिषेवितं सादरेण वै।। ध्रुवपराशराभिष्टद प्रभो जनप गृह्यतां पाद्यमुत्तयम्॥4॥

अर्घ्यम्- कनकसम्पुटे स्थापितं वरं जलसुवर्णमुक्ताफलैर्युतम्।। करसरोरुहाभ्यां ध्रुतं मया जनप गृह्यतामर्घ्यमुत्तमम्॥5।।

आचमनीयम्-तव रमायुजः सेवनाऽजना नृपतिसन्निभाः संभवन्ति हि।। सुरतरङ्गिणी शुद्धवारिभिर्जनप गृह्यतामाचमनं शुभम्॥6॥

पयस्नानम्-सुरगबुद्भवं वीर्यवर्धकं निखिलदेहिनां जीवनप्रदम्।। शशधरप्रभं फेनसंयुक्तं जनप गृह्यतामर्पितं पयः॥7॥

दधिस्नानम्- शुचिपयःसम्मुद्भूतमुत्प्रदं व्रजनिवासिभिः स्वादितं शुभम्।। रजतस्नाननिभं शीततामयं जनप गृह्यतामर्पितं दधि॥8॥

घृतम्-हुतवहप्रियं क्षीरजोद्भवं सकलदेहिनां सत्त्ववर्धकम्।। कुमुदसदृशं विष्णुदैवतं जनप गृह्यतामर्पितं घृत्तम्॥9॥

मधुस्नानम्- मधुलतोद्भवं स्वादु मञ्जुलं मधुपमक्षिकायैर्विनिर्मितम्॥ मधुरतामयं गन्धसंमदं मधुह तेऽर्पितं गृह्यतां मधु॥10॥

शर्करास्नानम् - मदनकार्मुकाद्याविनिर्मिता मधुरतान्विता सर्वपापहा।। सरसतां गता तारकोपमा जनप गृह्यतां शुद्धशर्करा॥11॥

अभ्यं0- कदम्बकेतकी पुष्पसम्भवं मृगमदान्वितं यत्रनिर्मितम्।।अनुपकारिणा भक्तितो मया जनप गृह्यतां तैलमर्पितम्॥12॥

स्नानम्-हरिपदाम्बुजानर्मदामही सरयुचन्द्रभागाभ्य आहुतम्॥ जलजवासितं स्नानहेतवे जनप गृह्यतामर्पितं जलम्॥13॥

वस्त्रम्-विविधतन्तुभिगुम्फितं नवं सुतपनीयभं सोत्तरीयकम् ।। मधुरिपो जगन्नाथ माधव जनप गृह्नतां वस्त्रमर्पितम्॥14॥

यज्ञोपवीतम्-त्रिगुणितं सितैरर्कतन्तुभिः कृत्तमिदं मया शुद्धचेतसा।। निगमसम्मतं बन्धमोचकं जनप गृह्यतामुपवीतकम्।।15।। गन्धः मलयसम्भवं पीतवर्णकं मृगमदादिभिर्वासितं वरम्।। मुदितषद्वदं कुंकमान्वितं जनप गृह्यतां गन्धमर्पितम्।।16॥ अक्ष0-कमलसम्भवा मौक्तिकोपमास्त्रिपथगोदकैः क्षालिताः शिवाः।। अगरुकुंकुमैर्मिश्रिता बरा जनप गृह्यतामर्पिताक्षताः॥17॥

पुष्पाणि - तरुणमल्लिकाकुन्दमाती- बकुलपङ्कजानां समुच्चयैः।। सततसुत्रितं भक्तितो मया जनप गृक्षतों हारमर्पितम्॥18॥

श्वेत0- कदम्बकेतकीवृक्षसम्भवं विविधसौख्यदं कान्तिवर्धनम्।। सितकरोपमं स्नेहसत्कृतं जनप गृह्यतां श्वेतचूर्णकम्॥19॥

रक्त0-अमरजादिभिर्देववृन्दकैः शिरसि वै धृतं प्रश्रयेण वा ॥ तपनसदृशं दृष्टिमुत्कलं जनप गृह्यतां रक्तचूर्णकम्॥20॥

सिंदू0- गणपतिप्रियं बालसूर्यभं पवनसूनुना स्वीकृतं सदा ।। सुरभिवासितं सूक्ष्मचूर्णकं जनप गृह्यतां नागसम्भवम्॥21।।

धूपः-अगरुगुग्गुलाज्यादिमिश्रितं तपनयोगजोद्भूतसौरभम्।। अमरवृन्दकैः स्नेह सत्कृतं जनप पृश्यतां धूपमुत्तमम्।।22।।

दीपः-अनलतैलिनीगोघृतान्वितं तिमिरना- शकं दीप्ततन्तुभिः।। कनकभाजने स्थापितं मया जनप गृह्यतां दीपमुत्तमस्॥23॥

नैवे0-पनसदाडिमाम्रादि। दिसत्फलं सुघृतमोदकापूषपायसम्।। रजतभाजने स्थापितं मया जनप गृह्यताम् अस्य भूषणम्॥24।।

आच0- जलधिगोद्भवं शीततामयं सकलप्राणिनां प्राणदायकम्।। विधिसमर्पितं शुद्धचेतसा जनप गृह्यतामाचमनं शुभम्॥25॥

ताम्बूलम्-खपुर सम्भवं पुगचूर्णयुग् मृगमदेलुकावासितं वरम्।। फणिलतादलैः कुल्प्तबीडकं जनप गृह्यतामास्यभूषणम्॥26॥

दक्षि0-निखिलयाचिनां श्रेष्ठभोगदा निगमसम्मता कर्मपूर्णदा।। सकलभूजनैवांछिता सदा जनप गृह्यतां हेमदक्षिणा॥27॥ नीरा0-हुतवहाप्रियैर्मिश्रितं वरं जलधिजैर्युतं सर्वपापहम् ।। मुखविलोकनार्थाय संस्कृतं जनप गृहातामार्तिकं शुभम् ।।28।।

प्रद0 वरद सञ्चितं पूर्वजन्मभिर्दहति किल्विषं त्वत्प्रदक्षिणा।। नरहरिं मुदा शुद्धचेतसा सततमीश्वरं त्वां नमाम्यहम्॥29॥

नम0-जय जय प्रभो सात्वतांपते शरणवत्सलाभिष्टसाधक।। यदुपते जगन्नाथ सर्वदा शरणमागतं पाहि पाहि माम्।।30॥ इति विष्णोस्त्रिंशोपचारपूजा

राजोपचार शास्त्रोक्त पूजाकर्म- षोडशोपचार पूजाविधान के अतिरिक्त छत्र, चमर, पादुका, रत्न एवं आभूषण इत्यादि विविध सामग्रियों तथा राजाशाही सज्जा से किया जाना पूजन राजोपचार पूजन कहलाता है।

इकाई: 2, आगम ग्रन्थों का सामान्य परिचय

वेद का परिचय-

वेद शब्दार्थ- वेद शब्द का अर्थ ही है ज्ञान और इस तरह वेद सकल ज्ञान-विज्ञान की निधि हैं। परा और अपरा दोनों विद्याओं का निरूपण करते हैं यही मनु का उद्घोष है कि सर्वज्ञानमयो हि सः' (सः) वह वेद (सर्वज्ञानमयः) सभी प्रकार के ज्ञान से युक्त हैं। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन वेदों से ओतप्रोत है। सिद्धान्तकौमुदी में 'विद्' धातु के अर्थ इस प्रकार वर्णित हैं-

सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे।

विन्दते विन्दति प्राप्तौ ॥

- **विद् सत्तायाम् (दिवादि-गणे)**- जिसके द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरुप का ग्रहण
- हो, वही वेद है।
- **विद् ज्ञाने (अदादि-गणे)** - जिसके द्वारा धर्म एवं ब्रह्म का ज्ञान हो, वह वेद है।
- **विद् विचारणे (रुधादि-गणे)** –जिसके द्वारा धर्म और ब्रह्म का विचार किया जाए, वह वेद है।
- **विद्लृ लाभे (तुदादि-गणे)**- जिसके द्वारा ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान हो, वह वेद
- है।
- **वेद के पर्यायवाची - यथा-** (1) **श्रुतिः** (2) **निगमः** (3) **आगमः** (4) **त्रयी** (5)
- **छन्दः**(6) **स्वाध्यायः** (7) **आम्नायः।**

शब्दार्थ की तरह अनेक विद्वानों ने वेद शब्द के नाना अर्थ भी प्रदान किए हैं यथा-

आचार्य सायण- अपौरुषेयं वाक्यं वेदः।

इष्ट प्राप्ति अनिष्ट परिहारयोः अलौकिकम् उपायं यः ग्रन्थो वेदति स वेदः ।

आचार्य यास्क-पुरुषविद्याऽनित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रे वेदे।

स्वामी दयानन्दसरस्वती- विन्दन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्ते विचारयन्ति विदन्ते लभन्ते सर्वे।

प्रातिशाख्यम्- विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्था यैः ते वेदाः।

आचार्य आपस्तम्ब- मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनामधेयम्।

चार वेद हैं-

1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3.. सामवेद 4.. अथर्ववेद

वेदों की महत्ता

प्राचीन ऋषियों ने अपनी तपस्सिद्ध दिव्य चैतन्यमयी आर्ष दृष्टि से जिस दिव्य ज्ञान का दर्शन (साक्षात्कार) किया है, उसको वेद कहते हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा एवं धर्म के मूल में वेदों में निहित दिव्य ज्ञान ही है। मनु ने धर्म के मुख्य स्रोत के रूप में वेदों को स्वीकार करते हुए कहा है- **"स सर्वोऽभिहितो वेदे। सर्वज्ञानमयो हि सः। वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"।**

आचार्य सायण के अनुसार इन्द्रियातीत तत्त्वों की प्रतीति वेदों से होती है –

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।

एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

वेदों की अपौरुषेयता

वेद किसी भी मनुष्य द्वारा रचित नहीं है, यह अपौरुषेय है। मीमांसा में कहा गया है- **'अपौरुषेयं वाक्यं वेदः'**। वेद के ज्ञान को ऋषियों द्वारा साक्षात् किया गया, **'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'**। ऋग्वेद में वेद को शाश्वत और अपौरुषेय के रूप में वर्णित किया गया है, **'वाचा विरूपा नित्यता'** (ऋग्वेद 8.76.6)। इसी प्रकार उपनिषद् कहता है कि वेद परब्रह्म के नि:श्वास हैं, अतः परब्रह्म के समान ही शाश्वत हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार वेद परमात्मतत्त्व के निःश्वासभूत हैं –

'अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः'। (बृ.उ.2.4.)

वेदों का काल

श्री बालगङ्गाधर टिलक - श्री बालगङ्गाधर टिलक ने मृगशिरा नक्षत्र में वसन्त सम्पात का समय 4.4.4.4. ईसा पूर्व माना है। अतः इसे आधार मानकर वेदों का रचनाकाल चार भाग में विभक्त किया है।

1. अदिति काल- 6000 ईसा पूर्व से 4.000 ईसा पूर्व तक निविद् मन्त्रों का रचना काल।

2. मृगशिरा काल- 4.000 ईसा पूर्व से 25.00 ईसा पूर्व तक ऋग्वेद के अधिकांश ऋचाओं का रचना काल।

3. कृत्तिका काल- 25.00 ईसा पूर्व से 14.00 ईसा पूर्व तक संहिताओं का संकलन एवं ब्राह्मण वाङ्मय रचना तथा वेदाङ्ग ज्योतिष का रचना काल।

4. अंतिम काल 14.00 ईसा पूर्व से 5.00 ईसा पूर्व तक गृह्यसूत्र और दर्शनसूत्रों की रचना

श्री शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित- शतपथ ब्राह्मण (2-12) में पठित कृत्तिका नक्षत्र के पूर्व बिन्दु से उदय के आधार पर वेदों का रचना काल 3.5.00 ईसा पूर्व में मानते हैं।

श्री अविनाश चन्द्र दास- भूगर्भ शास्त्र के आधार पर वेदों का रचना काल को 25.000 ईसा पूर्व में मानते हैं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती- सृष्टि के प्रारम्भ से वेदों का रचना काल माना है।

डॉ. आर. जी. भण्डारकर- 6000 ईसा पूर्व माना है।

मैक्समूलर- वैदिक-संस्कृत-भाषा-रचना के आधार पर वेदों का रचना काल का निर्णय किया है।

1. छन्दःकाल- 1200 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व
2. मन्त्र काल- 1000 ईसा पूर्व से 800 ईसा पूर्व
3. ब्राह्मण काल-800 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व
4. सूत्रकाल- 600 ईसा पूर्व से 4.00 ईसा पूर्व

विन्टरनिट्ज - 25.00 ईसा पूर्व से 2000 ईसा पूर्व तक वेदों का रचना काल माना है।

यकोबी- गृह्यसूत्र में ध्रुवनक्षत्र को आधार मानकर यकोबी ने 4.5.00 ईसा पूर्व से 25.00 ईसा पूर्व तक वेदों का रचना काल माना है।

मैकडोनल- 1000 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व तक वेदों का रचना काल माना है।

ह्विट्नी एवं श्रोडर- 2000 ईसा पूर्व से 15.00 ईसा पूर्व तक वेदों का रचना काल माना है।

वेद एवं शाखाएँ –

वेद	उपलब्ध शाखा	ब्राह्मण	उपनिषद्	शिक्षा-प्रातिशाख्य	विशिष्ट विवरण
ऋग्वेद आयुर्वेद	शाकल शांखायन	ऐतेरय ब्राह्मण शांखायन ब्राह्मण	ऐतरेय उपनिषद् कौषीतकि उपनिषद्	पाणिनीय शिक्षा ऋक्प्राति-शाख्यम्	एक श्रुति से पाठ करने वाली ऋचाएँ)/स्तुति ऋत्विक- होता मण्डल-10, सूक्त-1028, अष्टक- 8, वर्ग-2024. आचार्य- पैल, देवता- अग्नि, उपवेद- आयुर्वेद 10552 मन्त्र 153826शब्द 432000वर्ण

ऋग्वेद–

वैदिक वाङ्मय में पाद, अर्थ से युक्त तथा छन्दोबद्ध ऋचाओं के समूह को ऋग्वेद कहा गया है, महर्षि जैमिनि के अनुसार- 'पादबद्धा ऋक्'। विष्णुमित्र ने कहा है- 'यः कश्चित्पादवान्मन्त्रो युक्तश्चाक्षरसम्पदा। स्वरयुक्तोऽवसाने च तामृचं परिजानते॥' जिस वेद के मन्त्रों से देवताओं का स्तुति की जाती है, उस वेद को ऋग्वेद कहते हैं। जैमिनीय न्यायमाला में कहा गया है - ऋच्यन्ते स्तूयन्ते देवा अनया इति ऋक्। निष्कर्ष रूप में, जिन मन्त्रों में अर्थ विच्छिन्न नहीं होता है, जिन मन्त्रों में अर्थ के अनुसार पाद होते हैं तथा जिन मन्त्रों में पाद, निर्दिष्ट अक्षरसंख्या से निबद्ध होते है, उन मन्त्रों का समूह ही ऋग्वेद है।

ऋग्वेद की शाखाएँ -

महर्षि पतञ्जलि ने कहा है- 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्' अर्थात्, ऋग्वेद में इक्कीस (21) शाखाएँ बताई है। परन्तु चरणव्यूह में ऋग्वेद की यह पाँच शाखाएँ है-

1. शाकलशाखा 2. बाष्कलशाखा 3.. शांखायनशाखा

4.. आश्वलायनशाखा 5.. माण्डूकायनशाखा

वर्तमान में इनमें से केवल शाकल शाखा ही अध्ययन-अध्यापन परम्परा में दिखाई देती है। अन्य शाखाओं में कुछ शाखाओं की संहिताएँ ही प्राप्त होती हैं जैसे- शांखायन संहिता ।

ऋग्वेद की मन्त्र संख्या -

ऋग्वेद में कुल 10,502 ऋचाएँ, 2006 वर्ग, 1017 सूक्त तथा 11 परिशिष्ट (खिल) सूक्त हैं। ऋग्वेद को अष्टक क्रम एवं मण्डल क्रम में विभक्त किया जाता है। परम्परा में सस्वर अध्ययन की दृष्टि से अष्टक क्रम ही मानक है।

अष्टक क्रम –

इस विभाजन क्रम में सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता को 8 अष्टकों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक अष्टक में 8 अध्यायों को समाहित किया गया है तथा प्रत्येक अध्याय में 'वर्ग' प्राप्त होते हैं। इस विभाजन क्रम में ऋग्वेद संहिता कुल 64 अध्यायों में विभाजित है।

मण्डल क्रम-

इस विभाजन क्रम में सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता को 10 मण्डलों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक मण्डल में अनुवाकों का तथा प्रत्येक अनुवाक में सूक्तों का समायोजन किया गया है। यह विभाजन ऋषि, देवता, छन्द की दृष्टि से उपयुक्त माना जाता है। आधुनिक वेद चिन्तक मण्डलक्रम का आश्रय लेते हैं।

यजुर्वेद परिचय

यजुर्वेद शब्दार्थ - यजुष् शब्द यज् धातु से निष्पन्न है, जिसके अनेकार्थ प्राप्त होते हैं –

1. **इज्यते अनेन इति यजुः** – जिसके द्वारा यजनादि क्रिया की जाती है वह यजुः है।
2. **गद्यात्मको यजुः** – ऋग्वेदादि संहिताओं के मन्त्र छन्दोबद्ध हैं, परन्तु यजुर्वेदीय मन्त्र गद्यात्मक होने के कारण इन्हें यजुः कहा गया।

3.. **अनियतपदाक्षरावसानो यजुः** – जिन मन्त्रों के अक्षर, पाद एवं अवसान आदि अनिश्चित हो उसे यजुः कहा गया है।

शतपथ ब्राह्मण में यजुः शब्द को यज्ञ कहा है- **यज्ञो ह वै नामैतत् यद्यजुरिति।**

इस प्रकार विशेष रूप से यज्ञादि कर्म को सम्पादित करने वाले वेद को यजुर्वेद कहते हैं।

वेद एवं शाखाएँ

वेद	उपलब्ध शाखा	ब्राह्मण	उपनिषद्	शिक्षा-प्रातिशाख्य	विशिष्ट विवरण
कृष्ण यजुर्वेद धनुर्वेद	तैत्तिरीय मैत्रायणी कठ कपिष्ठल	तैत्तिरीय ब्राह्मण	तैत्तिरीय मैत्रायणी श्वेताश्वतरोपनिषद् कठोपनिषद्	माण्डव्य, भारद्वाज, वासिष्ठी, व्यास, अवसाननिर्णय, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य	काण्ड – 7 प्रपाठक/प्रश्न – 4.4. अनुवाक – 65.1 पञ्चाशत् - 2198

यजुर्वेद का विभाजन - चरणव्यूहादि वाङ्मय के अनुसार यजुर्वेद की कुल 101 शाखाएँ हैं, शाखाओं की संख्या में विभिन्नता होने पर भी अनेक विद्वानों ने यजुर्वेद की शाखाओं की संख्या 101 स्वीकार की है। महर्षि पतञ्जलि ने भी 'एकशतमध्वर्युशाखा' कहकर यजुर्वेद की 101 शाखाओं का उल्लेख किया है।

यजुर्वेद में दो विभाग हैं- 'शुक्ल यजुर्वेद' तथा 'कृष्ण यजुर्वेद'। चरणव्यूह के अनुसार शुक्ल यजुर्वेद की 15. व कृष्ण यजुर्वेद कि 86 शाखाएँ हैं। विद्वानों के मत से मन्त्रभाग तथा ब्राह्मणभाग पृथक् होने से शुद्धस्वरूप के कारण शुक्ल यजुर्वेद है। इसी प्रकार मन्त्रभाग, ब्राह्मणभाग तथा आरण्यक भाग के मिश्रत्व के कारण कृष्ण यजुर्वेद कहा गया है।

शुक्ल यजुर्वेद- द्वापर युग में मनुष्यों की अल्प प्रज्ञा को ध्यान में रखते हुए महर्षि वेदव्यास जी ने सम्पूर्ण वेदराशि को चार भागों में विभक्त कर अपने शिष्यों पैल, वैशम्पायन, जैमिनि तथा सुमन्तु द्वारा प्रवर्तित किया। महर्षि याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन महर्षि वैशम्पायन से किया। दैवदुर्विलास से अपने गुरु की आज्ञा का उल्लङ्घन होने के कारण गुरु आज्ञा से अधीत विद्या का त्याग कर कालक्रम में महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने गायत्री पुरश्चरण और सूर्योपासना कर भगवान आदित्य के अनुग्रह से आदित्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत चारों वेदों को प्राप्त किया ।

आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते । (शतपथ ब्राह्मण 14..9.5..3.3.)

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा प्रवर्तित शुक्ल यजुर्वेद की 15. शाखाएँ –

1. काण्व	2. माध्यन्दिन	3.. शापेय
4.. तापनीय	5.. कपोल	6. पौण्ड्रवत्स
7. आवटिक	8. परमावटिक	9. पाराशर्य
10. वैनधेय	11. बौधेय	12. औधेय
13.. गालव	14.. बैजवाप	15.. जाबाल

शुक्ल यजुर्वेद का स्वरूप -

शुक्ल यजुर्वेद की काण्व एवं माध्यन्दिन दो शाखाओं का ही अध्ययन-अध्यापन वर्तमान समय में प्रचलित है अन्य तेरह शाखाओं की अध्ययन परम्परा तथा संहिताएँ अनुपलब्ध हैं। इस वेद की 86% शाखाएँ लुप्त हो गई हैं।

वेद एवं शाखाएँ –

वेद	उपलब्ध शाखा	ब्राह्मण	उपनिषद्	शिक्षा-प्रातिशाख्य	विशिष्ट विवरण
शुक्ल यजुर्वेद सम्प्रदाय-आदित्य	काण्व एवं माध्यन्दिनीय	काण्व-शतपथ ब्राह्मण	ईशावास्योपनिषद् (संहिता के 40वां अध्याय) बृहदारण्यकोपनिषद्	याज्ञवल्क्य शिक्षा, वाजसनेयि प्रातिशाख्य	विषय- याग ऋत्विक- अध्वर्यु माध्यन्दिन – अध्याय 40, अनुवाक – 3.03. मन्त्र – 1975. **काण्व -** अध्याय – 4.0 अनुवाक – 328 मन्त्र - 2086 आचार्य- वैशम्पायन देवता- वायु उपवेद- धनुर्वेद

काण्वसंहिता

काण्व शाखा – काण्व शाखा शुक्ल यजुर्वेद की प्रथम शाखा मानी जाती है। महर्षि बोधायन के पुत्र महर्षि कण्व इसके प्रथम प्रवर्तक हैं। सम्पूर्ण भारत में काण्व शाखा की दो उच्चारण पद्धतियाँ प्रचलित हैं- काशी पद्धति एवं दाक्षिणात्य पद्धति। वर्तमान समय में काण्व शाखा का अध्ययन-अध्यापन उत्तर भारत, दक्षिण भारत, महाराष्ट्र, गुजरात, ओडिशा प्रान्त में प्रचलित है। शुक्ल यजुर्वेद कि काण्व संहिता में कुल 4.0 अध्याय, 3.28 अनुवाक, 2086 मन्त्र हैं।

माध्यन्दिन शाखा - शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन शाखा के प्रथम प्रवर्तक महर्षि मध्यन्दिन हैं। माध्यन्दिन शाखा का सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलन है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता में 40 अध्याय, 303. अनुवाक तथा 1975 मन्त्र हैं ।

कृष्णयजुर्वेद परिचय

कृष्ण-यजुर्वेद की 86 शाखाओं में से 4.3. शाखाओं के नाम एवं 4. शाखाओं की ही संहिताएँ उपलब्ध हैं, जो अध्ययन-अध्यापन परम्परा में प्रचलित हैं- (1) तैत्तिरीय शाखा (2) मैत्रायणी शाखा (3.) कठशाखा और (4.) कपिष्ठल शाखा। इस वेद की भी 95.% शाखाएँ लुप्त हैं।

कृष्णयजुर्वेद में संहिता, ब्राह्मण व आरण्यक इन तीनों में मन्त्र-ब्राह्मण एक साथ ही हैं। अतः **'त्रीणि मन्त्रब्राह्मणारण्यकानि यस्मिन् वेदशब्दराशौ सह तरन्ति पठ्यन्ते, असौ तित्तिरिः'** ऐसी व्युत्पत्ति कर सकते हैं। शौनकीय चरणव्यूह परिशिष्ट में यजुर्वेद का लक्षण बताते हुए इसी भाव को स्पष्ट किया गया है-

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदे त्रिगुणं यत्र पठ्यते ।

यजुर्वेदः स विज्ञेयः अन्ये शाखान्तराः स्मृताः॥ - चरणव्यूह

इस कथन का यह अभिप्राय लिया जाता है कि जहाँ मन्त्र और ब्राह्मण का एक साथ त्रिगुण पाठ (संहिता-पद-क्रम) किया जाता है, उसे यजुर्वेद जानना चाहिए।

वेद एवं शाखाएँ–

वेद	उपलब्ध शाखा	ब्राह्मण	उपनिषद्	शिक्षा-प्रातिशाख्य	विशिष्ट विवरण

कृष्ण यजुर्वेद धनुर्वेद ब्रह्म सम्प्रदाय	तैत्तिरीय मैत्रायणी कठ कपिष्ठल	तैत्तिरीय ब्राह्मण	तैत्तिरीय मैत्रायणी श्वेताश्वतरोपनिषद् कठोपनिषद्	माण्डव्य, भारद्वाज, वासिष्ठी, व्यास, अवसाननिर्णय, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य	काण्ड – 7 प्रपाठक/प्रश्न – 4.4. अनुवाक – 65.1 पञ्चाशत् - 2198

तैत्तिरीय शाखा

कृष्णयजुर्वेद के प्रवर्तक वैशम्पायन के शिष्यों में तित्तिर ऋषि थे । तित्तिर का नामोल्लेख महर्षि पाणिनि ने भी किया है, अतः तित्तिर नामक ऋषि के द्वारा प्रवचन किए हुए यजुषों एवं उनके अनुयायी लोगों को तैत्तिरीय नाम दिया गया,इसमें मन्त्र और ब्राह्मण का मिश्रित पाठ है, अतः मन्त्र, ब्राह्मण और आरण्यक जिस शाखा या वेदभाग में सम्मिश्रित रूप में अन्तर्हित हैं, वह वेदभाग या शाखा तैत्तिरीय माने जाते हैं।

मैत्रायणीय संहिता-

मैत्रायणी शाखा के सम्बन्ध में हरिवंश पुराण में वर्णन प्राप्त है। पं. भगवद्दत्त के अनुसार मैत्रायण ऋषि मैत्रायणी शाखा के प्रवर्तक थे। इस शाखा के भौगोलिक क्षेत्र गुजरात और नर्मदा के उत्तरी प्रदेश थे। मानव गृह्यसूत्र की भूमिका के अनुसार यह शाखा मयूर पर्वत से लेकर गुर्जरदेश-पर्यन्त पश्चिमोत्तर कोण में फैली थी। गुजरात में मोढ़ ब्राह्मण इस शाखा का अनुसरण करते हैं।

मैत्रायणी संहिता में ही मन्त्र एवं ब्राह्मण दोनों का पाठ प्राप्त है, इसमें चार काण्ड एवं 5.4. प्रपाठक हैं। इस शाखा का मैत्रायणीयोपनिषद् भी उपलब्ध है। मैत्रायणीय शाखा के मानव, वराह आदि श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र हैं।

काठक या कठ शाखा -

व्यास के शिष्य वैशम्पायन के 9 शिष्यों में औदीच्य आचार्य कठ भी थे। कठ ऋषि इस शाखा के प्रवर्तक हैं। कृष्णयजुर्वेद की कठ या काठक शाखा अत्यधिक प्रसिद्ध थी। पतञ्जलि के अनुसार प्रत्येक ग्राम में कठ एवं कालाप शाखा का अध्ययन किया जाता था- "ग्रामे ग्रामे काठकं कालापं च प्रोच्यते"

(महाभाष्य-4..3..101)। कठशाखीय ब्राह्मण कपिष्ठल-शाखीयों के साथ पंजाब प्रान्त में रहते थे। वर्तमान में कठ-शाखीय ब्राह्मण कश्मीर में ही उपलब्ध हैं। ब्यास नदी का तटवर्ती क्षेत्र भी इस शाखा के अध्येताओं का स्थान था, इसी कारण आज भी हरियाणा, पंजाब, कश्मीर, हिमाचल समेत समस्त उत्तर भारत में वेदों के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास है। इस शाखा की संहिता, ब्राह्मण, कठोपनिषद्, गृह्यसूत्र आदि उपलब्ध हैं। काठक-गृह्यसूत्र को लोगाक्षि गृह्यसूत्र के नाम से अभिहित किया जाता है।

काठक संहिता में 5. खण्ड, 4.0 स्थानक, 13. अनुवचन, 84.3. अनुवाक् तथा 3.093. मन्त्र हैं। काठक संहिता में दर्शपूर्णमास, ज्योतिष्टोम, उपस्थानादि यजमान-कर्म, आधान, काम्य-इष्टियाँ आदि विभिन्न यागों का वर्णन है।

कपिष्ठल-कठ शाखा -

कपिष्ठल-कठ शाखा का सम्बन्ध कठ शाखा से है। चरणव्यूह ने चरक शाखा के अन्तर्गत कठ, प्राच्य कठ, तथा कपिष्ठल-कठ उपशाखाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। कपिष्ठल शाखा का प्रसार कपिष्ठल देश (वर्तमान में कैथल-हरियाणा) में होने के कारण 'कपिष्ठल' शाखा कहलाई। इस शाखा के प्रवर्तक ऋषि का उल्लेख नहीं है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में गोत्रवाची कपिष्ठल शब्द का उल्लेख "कपिष्ठलो गोत्रे च" इस सूत्र में किया है। कठ शाखा के ब्राह्मण अपने अवान्तर कपिष्ठलों को लेकर ग्रीक आक्रमण के समय पञ्जाब में रहते थे। वहाँ से आगे बढ़कर कुछ लोग कश्मीर में जा बसे।

यह संहिता अष्टक एवं अध्यायों और वर्गों में विभक्त है। संहिता के केवल प्रथम, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ अष्टक उपलब्ध हैं। द्वितीय और तृतीय अष्टक उपलब्ध नहीं हैं। कपिष्ठल-कठ शाखा के गृह्य-सूत्र की अपूर्ण पाण्डुलिपि प्राप्त है।

सामवेद परिचय

सामवेद का सम्बन्ध उपासना से है। सामवेद गायन की दृष्टि से वेदों में प्रमुख है। छान्दोग्य उपनिषद् में गायन के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि गद्य, पद्य और गायन में गायन ही सर्वाधिक प्रभावी तथा मनोहारी होता है, इसमें भी साधारण गद्य की अपेक्षा छन्द का, छन्द की अपेक्षा काव्य का, काव्य की अपेक्षा गायन का वैशिष्ट्य अधिक है। गायन में भी गानों का आलाप विशेष प्रभाव को उत्पन्न करता है। भारतीय संगीत परम्परा विशेषतः सप्त स्वरों का मूल सामवेद है।

'साम' शब्द का अर्थ

"षोऽन्तकर्मणि" धातु से उणादि "मनिन्" प्रत्यय के जुड़ने से 'साम' शब्द निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है- "स्यन्ति खण्डयन्ति दुःखानि येन तत् साम" अर्थात् जो दुःखों का अन्त करके मन को शान्त करे, वह 'साम' है। सामवेद पाठ और सामगान श्रवण करने से मन प्रसन्न होता है, यह विचार साम शब्द की व्युत्पत्ति से ही स्पष्ट है।

शास्त्रों के अनुसार 'साम' शब्द मुख्यतया तीन अर्थों में जानना चाहिए-

गीतिषु सामाख्या - गीतियों का नाम साम है। (जैमिनि सूत्र 2.1.3.6)

या ऋक् तत् साम - ऋक् का नाम साम है। (छान्दोग्योपनिषद् 1.3..4.)

ऋच्यध्यूढं साम – ऋचाओं पर अधिरूढ गेय मन्त्र साम कहलाता है। (छान्दोग्योपनिषद् 1.6.1)

सामवेदीय शाखाएँ –

प्राचीन वाङ्मय में सामवेद की हजार शाखाएँ या मार्ग (गानविधा) कहे गये हैं- महर्षि जैमिनि ने **"साम वै सहस्रवर्त्मनि"** तथा महर्षि पतञ्जलि ने **"सहस्रवर्त्मा सामवेदः"**(महाभाष्य पस्पशाह्निक) कहकर सामवेद की एक हजार शाखाओं का उल्लेख किया है। आचार्य शौनक ने चरणव्यूह ग्रन्थ में तेरह शाखाओं का उल्लेख किया है। वर्तमान समय में मात्र तीन ही शाखाएँ प्राप्त होती हैं- कौथुम, राणायनीय, तथा जैमिनीय शाखा। कौथुम तथा राणायनीय शाखाएँ गानविधा और उच्चारण भेद से ही भिन्न हैं, जबकि जैमिनीय शाखा में मन्त्रों की संख्या और भिन्नता प्राप्त होती है।

वेद एवं शाखाएँ -

वेद	उपलब्ध शाखा	ब्राह्मण	उपनिषद्	शिक्षा-प्रातिशाख्य	विशिष्ट विवरण
सामवेद **गन्धर्ववेद**	कौथुम राणायनीय जैमिनीय	पञ्चविंश(ताण्ड्य) षड्विंश,सामविधान आर्षेय,मन्त्र (छान्दोग्य) देवताध्याय,वंश संहितोपनिषद्	छान्दोग्य केनोपनिषद्	नारदीया, गौतमी, लोमशी, पुष्पसूत्र, ऋक्तन्त्र, सामतन्त्र,	विषय- गान(ऋचाओं का गान)/उपासना ऋत्विक- उद्गाता मन्त्र- 1875. (ऋक्)

		जैमिनीय ब्राह्मण जैमिनीयोपनिषद्- तलवकार ब्राह्मण		अक्षरतन्त्र	आचार्य- जैमिनी देवता- सूर्य उपवेद- गन्धर्ववेद

सामवेद का विभाजन

'साम' शब्द में ही सामवेद के दो प्रमुख घटकों का ज्ञान निहित है। साम, गीतियों और ऋचाओं का अभिधान है- **"गीतिषु सामाख्या" "या ऋक् तत् साम"।** इस प्रकार से सामवेद दो प्रमुख भागों में विभक्त है- ऋचा और गान (साम), जो क्रमशः आर्चिक (ऋचाओं से सम्बद्ध) और गान के रूप में जाना जाता है।

आर्चिक- 'आर्चिक' शब्द ऋक् समूह का द्योतक है। आर्चिक के दो भाग हैं- पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक में छः प्रपाठक हैं, प्रत्येक प्रपाठक दो अर्धों में विभक्त है, तथा प्रत्येक अर्ध में पाँच दशति होती हैं। दशति में प्रायः दस मन्त्र होते हैं, कहीं यह सङ्ख्या न्यूनाधिक होती है। पूर्वार्चिक में आग्नेय, ऐन्द्र, पवमान तथा आरण्यक पर्व हैं। परिशिष्ट में महानाम्नी पर्व भी प्राप्त होता है। पूर्वार्चिक में छह प्रपाठक तथा 650 मन्त्र हैं।

उत्तरार्चिक का स्वरूप यागोपयोगी है। इसमें प्रगाथ और तृच सूक्तों का संग्रह किया गया है। इसमें नौ प्रपाठक हैं। प्रथम पाँच प्रपाठकों में दो-दो प्रपाठकार्ध और अन्तिम चार में तीन-तीन प्रपाठकार्ध हैं। उत्तरार्चिक में कुल मन्त्र सङ्ख्या 1225 है। इस प्रकार सामवेद आर्चिक संहिता में 1875 मन्त्र हैं।

सामवेदीय गान भाग -

वस्तुतः गान दो प्रकार के हैं- (1) प्रकृतिगान (2) विकृतिगान।

अथर्ववेद परिचय

अथर्व शब्द थुर्वी धातु से निष्पन्न है। थुर्वी धातु का हिंसा अथवा गति के अर्थ में प्रयोग है। 'न थर्वः-अथर्वः' अथर्व का तात्पर्य अहिंसा अथवा स्थिरता से है। व्याकरण महाभाष्य के अनुसार "नवधा अथर्वणः" अर्थात् अथर्ववेद की नौ शाखाएँ हैं- पैप्पलाद, शौनक, तौद, मौद, जाजल, जलदा, ब्रह्मवदा,

चारणवैद्य और देवदर्श। वर्तमान में अथर्ववेद की दो शाखाएँ उपलब्ध हैं- शौनक और पैप्पलाद। दोनों में 20-20 काण्ड हैं। अथर्ववेद शौनक शाखा में सूक्त, अनुवाक, प्रपाठक, काण्ड इस प्रकार विभाग है। कुल सूक्तों की संख्या 731 है। अनुवाकों भी संख्या 111, प्रपाठकों की संख्या 3.6 है। 20 काण्ड में कुल 5987 मन्त्र है। 1-7 काण्ड पर्यन्त छोटे-छोटे सूक्त, 8-18 काण्ड तक बड़े-बड़े सूक्त एवं 19-20 काण्ड में पुनः सूक्तों की संख्या छोटी है। अथर्ववेद पैप्पलाद शाखा में 20 काण्ड, 923 सूक्त, 161 अनुवाक, 7850 मन्त्र है।

अथर्ववेद भाष्य के मङ्गलाचरण में सायणाचार्य जी का वाक्य है- **वेद त्रितयम् आमुष्मिकफलप्रदम्। ऐहिकामुष्मिकं चतुर्थं व्याचिकीर्षति ।**

वेद एवं शाखाएँ –

वेद	उपलब्ध शाखा	ब्राह्मण	उपनिषद्	शिक्षा-प्रातिशाख्य	विशिष्ट विवरण
अथर्ववेद अर्थशास्त्र	पैप्पलाद शौनक	गोपथ ब्राह्मण	प्रश्नोपनिषद् मुण्डकोपनिषद् माण्डूक्योपनिषद्	माण्डूकी शिक्षा अथर्वप्रातिशाख्य चतुराध्यामिका	विषय- प्रायश्चित्त विधान ऋत्विक- ब्रह्मा काण्ड – 20 मन्त्र- 5987 आचार्य- सुमन्तु देवता- सोम

वेदाङ्ग का सामान्य परिचय

वेदों की सार्थक व्याख्या करने अङ्गों को 'वेदाङ्ग ' कहते हैं। वेदाङ्ग के छः प्रकार हैं-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। वेदों के उच्चारण, पद-पदार्थ की व्युत्पत्ति, अक्षरमात्रा का ज्ञान और प्रयोग आदि में निपुणता प्राप्त होती है।

वेदों के छः अङ्ग हैं –

1. शिक्षा 2. कल्प 3.. व्याकरण 4.. निरुक्त 5.. छन्द 6. ज्योतिष

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते

ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्

तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

शिक्षा

'शिक्षा ’को वेद की नासिका मानी जाती -'**शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य**'। शिक्षा वह शास्त्र है, जो स्वर, वर्ण आदि उच्चारण के प्रकार का उपदेश दे, "**स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा**”। वेदाध्ययन की प्रणाली गुरुमुख से है, अतः वेद का एक सार्थक नाम अनुश्रव है, **“अनु पश्चात् श्रूयते यः स अनुश्रवः** ”अर्थात् जो गुरु के उच्चारण के अनन्तर सुनी जाए और शिष्य उसी के समान उसका ठीक उच्चारण करे। 'शिक्षा' वस्तुतः ध्वनि-विज्ञान है, जिसके अन्तर्गत वर्णों, स्वरों, मात्राओं, उच्चारण-स्थानों तथा उच्चारण-प्रकारों का विवेचन है। वेदमन्त्रों के सही उच्चारण से ही वेदोक्त यज्ञादि के फल की प्राप्ति होगी।

वेदमन्त्रों के सही उच्चारण के लिए स्वरज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। मुख्य रूप से स्वर तीन प्रकार के हैं - उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। ये स्वर अर्थ परिवर्तन के विधायक भी हैं। इस विषय में स्वर परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन को ज्ञापित करने वाली एक प्रसिद्ध घटना है जिससे ज्ञात होता है कि अशुद्ध स्वर के उच्चारण से कितना अनर्थ हो जाता है। इन्द्र को पराजित करने के लिये त्वष्टा ऋषि वृत्रासुर का यज्ञ करा रहे थे। उन्होंने मन्त्रपाठ किया‘ -**इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व स्वाहा**’, उनका उद्देश्य था कि हे इन्द्र के नाशक) शत्रु !(तुम बढ़ो। यहाँ तत्पुरुष समास होने के कारण अन्तोदात्त होना चाहिए था, किन्तु भ्रान्तिवश आद्युदात्त का उच्चारण हो गया जो बहुव्रीहि समास में होता है, फलस्वरूप अर्थ हुआ इन्द्रशत्रु)इन्द्र का शत्रु, इन्द्र जिसका नाशक, वह बढ़े (इस तरह वृत्रासुर ही मारा गया।

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥ (नारदीयशिक्षा 1.5.)

अतः वेदाध्ययन में शुद्ध उच्चारण पर बल दिया गया है। पाणिनीय शिक्षा में छः प्रकार के अधम पाठकों का उल्लेख है-

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।

अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः॥ (पाणिनीयशिक्षा 7.3.2)

अर्थात् गाकर, शीघ्रतापूर्वक, सिर हिलाकर, बिना विचारे लिखे हुए को, बिना अर्थ जाने और अल्पकण्ठ से मन्त्रपाठ करने वाले) धीमे स्वर से पढने वाले (ये छ :निम्नकोटि के पाठक हैं।

ब्राह्मण वाङ्मय में शिक्षासम्बद्ध नियमों का उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है। तैत्तिरीय उपनिषद् की प्रथम वल्ली में शिक्षा विषयक मूल सिद्धान्त प्रतिपादित है। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार शिक्षा के छः अङ्ग हैं -वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान।

शिक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्।

साम सन्तानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः॥ (तैत्तिरीय शिक्षावल्ली)

इनमें पाणिनीय शिक्षा ने6 3.) संवृत अ को विवृत अ से पृथक् मानने पर6 4.' (वर्ण 'बताये हैं - **"त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः"**। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित' स्वरों 'के उच्चारण में लगने वाला काल' मात्रा 'कहलाता है, ये हैं ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। ह्रस्व को एकमात्राकालिक, दीर्घ को द्विमात्राकालिक और प्लुत को त्रिमात्राकालिक माना गया है। वर्णोच्चारण में होने वाले प्रयत्न तथा उनके उच्चारण-स्थान को' बल 'कहते हैं। आभ्यन्तर और बाह्य दो प्रकार के प्रयत्न तथा कण्ठ ताल्वादि उच्चारण स्थान हैं।' साम 'का अर्थ है साम्य अर्थात् दोष से रहित तथा माधुर्यादि गुणों से युक्त उच्चारण। उच्चारण साम्य के लिये छः गुण अपेक्षित हैं, जिसमें गुण एवं दोष दोनों की साम्यता विचार किया गया हो वह साम कहलाता है।

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः। धैर्यं लयसमर्थञ्च षडेते पाठका गुणाः॥

साधारणतः शिक्षाएँ प्राचीन ऋषियों के नाम से सम्बद्ध हैं। दीर्घविधान आदि संहिताओं के पाठ से सम्बद्ध समस्त विषयों का प्रातिशाख्यों में साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है।' **प्रतिशाखं भवं**

प्रातिशाख्यम्', इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रतीत होता है कि वेदों की जितनी शाखाएँ थी, उतने ही प्रातिशाख्य ग्रन्थ रहे होंगे। यद्यपि इन पूर्वाचार्यों की सभी कृतियाँ आज उपलब्ध नहीं हैं, जो शिक्षाएँ और प्रातिशाख्य वर्तमान में मुख्यतया उपलब्ध हैं, वेदक्रमानुसार उनके नाम इस प्रकार हैं -

ऋग्वेद की शिक्षाएँ व प्रातिशाख्य	**शिक्षाएँ**- स्वराङ्कुश शिक्षा, षोडशश्लोकी शिक्षा, शैशिरीय शिक्षा, व्यालि शिक्षा, पाणिनीय शिक्षा, शौनक शिक्षा। **प्रातिशाख्य** – ऋक्प्रातिशाख्य।
यजुर्वेद की शिक्षाएँ व प्रातिशाख्य	**शुक्लयजुर्वेद की शिक्षाएँ** - याज्ञवल्क्य शिक्षा, कात्यायनी शिक्षा, माध्यन्दिनी शिक्षा, वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा, मानस्वार शिक्षा। **प्रातिशाख्य** - वाजसनेयी प्रातिशाख्य। **कृष्णयजुर्वेद की शिक्षाएँ** - भारद्वाजशिक्षा, व्यासशिक्षा, आत्रेयी शिक्षा, आरण्यक शिक्षा, कौण्डिन्य शिक्षा, सप्तलक्षण, षड्विंशतिसूत्राणि। **प्रातिशाख्य** - तैत्तिरीय प्रातिशाख्य।
सामवेद की शिक्षाएँ व प्रातिशाख्य	**शिक्षाएँ** - गौतमी शिक्षा, लोमशी शिक्षा, नारदीया शिक्षा। **प्रातिशाख्य** - ऋक्तन्त्र, सामतन्त्र, अक्षरतन्त्र, पुष्पसूत्र।
अथर्ववेद की शिक्षाएँ व प्रातिशाख्य	**शिक्षा** - माण्डूकी शिक्षा। **प्रातिशाख्य** - अथर्ववेद- प्रातिशाख्य, शौनकीय चतुरध्यायिका।

कल्प

वेदविहित कर्मों का अक्षरशः वर्णन करानेवाले शास्त्र को कल्प कहते हैं, जैसा कि ऋक्प्रातिशाख्य के वृत्तिकार विष्णुमित्र **ने कहा है-"कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्"**। भाष्यकार कर्काचार्य ने भी कात्यायन श्रौतसूत्र के सन्दर्भ में कल्पसूत्र का अर्थ विधिवाक्यों का संग्रह बताया है। इस प्रकार गृहस्थ जीवन स्मार्त्त एवं श्रौत यागों एवं कर्मकाण्ड के विभिन्न विधि-विधानों, अनेक प्रायोगिक अनुष्ठानों, नियमोपनियमों, सामाजिक प्रथा-परम्पराओं आदि का स्पष्ट रूप से वर्णन करनेवाला कल्पसूत्र हैं।

वर्तमान में लगभग 50 कल्पसूत्र उपलब्ध हैं, इनमें मुख्य 2 कर्मों का प्रतिपादन है, जिनमें 14. श्रौतयज्ञ, 7 गृह्ययज्ञ, 5 महायज्ञ और 16 संस्कार हैं। कल्पसूत्र का वर्गीकरण चार श्रेणियों में उपलब्ध है यथा- -गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र।

गृह्यसूत्र -आयुष्य कर्म, उपनयन, विवाह, श्राद्ध आदि संस्कारों का विस्तृत ज्ञान करानेवाले सूत्रों को **गृह्यसूत्र** कहते हैं, इनमें गृहस्थ के कर्मों का वर्णन प्राप्त होता। गृह्यसूत्रों के मूल में स्मृति परम्परा निहित है, इसी कारण इन्हें स्मार्त्त भी कहा जाता है। इन सूत्रों में गृह्याग्निसाध्य सोलह संस्कारों, पाँच महायज्ञों, सात पाकयज्ञों तथा गृह निर्माण, गृहप्रवेश, पशुपालन, कृषिकर्म एवं रोगनाशिनी विविध विधियों का वर्णन हैं।

श्रौतसूत्र -श्रुति-प्रतिपादित श्रौतयागों वर्णन कराने वाले सूत्रों को श्रौतसूत्र कहते हैं। यथा- दर्शपौर्णमास, पिण्डपितृयाग, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य, निरूढपशु, सोमयाग, सत्र, गवामयन, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणी, अश्वमेध, पुरुषमेध आदि।

धर्मसूत्र - तन्त्रवार्तिककार भट्टकुमारिल का कथन है कि सभी धर्मसूत्र वर्णों और आश्रमों के कर्त्तव्यों का उपदेश करते हैं। उनकी परिधि में" व्यवहारधर्म "तथा" राजधर्म "भी सम्मिलित है, इनमें" सामयाचरिक धर्म) "समय अथवा परम्परा पर आधृत धर्म (की विशेष व्याख्या की गयी। इसे स्मार्त्त धर्म कहा जाता है। गौतम धर्मसूत्र का मत है कि वेदज्ञों का आचरण तथा उनकी परम्परा धर्म के मूल हैं। इसी की पुष्टि आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने भी की है" -**धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च"।**

शुल्बसूत्र -शुल्बसूत्र प्राचीन भारतीयों के प्रौढ ज्यामितीय वैदुष्य के परिचायक शास्त्र हैं।" शुल्ब "शब्द का वाच्यार्थ है रस्सी, जो सम्भवतः माप-पट्टिका का द्योतक है। कात्यायन शुल्बसूत्र की टीका में विद्याधर शर्मा ने भी" शुल्ब "का अर्थ मापने का साधन माना है। इस प्रकार शुल्बसूत्र का अर्थ है वेदियों तथा चितियों के मापन तथा निर्माण का निर्देशक शास्त्र। गार्हपत्याग्नि, आहवनीयाग्नि तथा दक्षिणाग्नि की स्थापना के लिए याग वेदियों का निर्माण अपेक्षित है। वेदी निर्माण की विधियाँ शुल्बसूत्रों में वर्णित हैं। इस विषय में विशेषज्ञ यज्ञविधि का संचालन एवं यज्ञस्थल के निर्माण का दायित्व निर्वहन अध्वर्यु करता है। समस्त शुल्बसूत्रों का यजुर्वेद के श्रौतसूत्रों से सम्बद्ध है।

शुल्बसूत्रों में विविध प्रकार की वेदियों का वर्णन है, जैसे गार्हपत्याग्नि वेदी वृत्ताकार या समचतुरस्त्र होनी चाहिए और आहवनीय वेदी समचतुरस्त्र के साथ दक्षिण अर्धवृत्ताकार रूप में वाञ्छित है। आज जिस प्रमेय को 'पाइथागोरस' के नाम से जाना जाता है और जो समचतुरस्त्र के करण पर बनाये हुए रूप में प्रसिद्ध है, उसके आविष्कार का श्रेय वास्तव में शुल्बसूत्रकार बोधायन को ही है। वैदिक यज्ञों में वेदियों के चयन के सम्बन्ध में विशेषता यह है कि उनमें कोई भी इष्टका) ईंट (तोड़कर नहीं लगायी जाती, इसलिए यत्नपूर्वक ऐसी इष्टकायें निश्चित परिमाण में निर्मित की जाती हैं, जिनसे ही वेदी का निश्चित आकार सम्पन्न होता है।

उपलब्ध कल्पसूत्रों का विवरण

वेद	श्रौतसूत्र	गृह्यसूत्र	धर्मसूत्र	शुल्बसूत्र
ऋग्वेद	आश्वलायन, शांखायन	आश्वलायन, शांखायन	वशिष्ठ	
शुक्लयजुर्वेद	कात्यायन	पारस्कर	विष्णु	कात्यायन
कृष्णयजुर्वेद	बौधायन, वाधूल, मानव, भारद्वाज आपस्तम्ब, काठक, सत्याषाढ, वैखानस, हिरण्यकेशी, वाराह	आपस्तम्ब, बौधायन सत्याषाढ, वैखानस भारद्वाज, वाधूल, हिरण्यकेशी, काठक, वाराह, अग्निवेश्य, मानव	बौधायन, वैखानस, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी	बौधायन, आपस्तम्ब मैत्रायणीय, हिरण्यकेशी , मानव
सामवेद	आर्षेयकल्प(मशक), जैमिनीय, लाट्यायन, द्राह्यायण, निदान	खादिर, गोभिल गौतम, जैमिनीय, कौथुम	गौतम	
अथर्ववेद	वैतान श्रौतसूत्र	कौशिक		

व्याकरण-

व्याकरण प्रकृति प्रत्यय के विश्लेषण का निर्णायक है, अतः इसे वेद का मुख माना जाता है - **"मुखं व्याकरणं स्मृतम्"**।

तैत्तिरीय संहिता में देवताओं की प्रार्थना पर इन्द्र द्वारा वाणी के व्याकृत किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है" -**ते देवा इन्द्रमब्रुवन्निमां नो वाचं व्याकुर्विति। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोतु"**॥ जिसका अर्थ आचार्य सायण ने प्रकृति-प्रत्यय-विभाग द्वारा अखण्ड वाणी को विच्छिन्न करना बताया **है। चत्वारि वाक्परिमिता पदानि0 एवं चत्वारि श्रृङ्गा त्रयो अस्य पादा0** आदि मन्त्रों की व्याख्या में महर्षि पतञ्जलि ने नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात इन शब्द विभागों, तीन कालों एवं सात विभक्तियों का संकेत दिया है। इसे आचार्य सायण मन्त्रों के व्याकरण-सम्प्रदाय के अर्थ के रूप में स्वीकार करते हैं।

अर्थात्" -**व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्** "अर्थात् पदों की मीमांसा करने वाला शास्त्र व्याकरण है। महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरण के पाँच मुख्य प्रयोजन बताए हैं - **"रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्** "अर्थात् वेद की रक्षा, ऊह -याज्ञिक प्रयोग एवं अर्थ की दृष्टि से यथास्थान विभक्ति परिवर्तन, आगम, लघु -संक्षेप में शब्द ज्ञान तथा असन्देह -सन्देह निराकरण। अतः स्पष्ट है कि वेदों के समग्र ज्ञान के लिए व्याकरण महत्त्वपूर्ण अङ्ग है।

संस्कृत व्याकरण की परम्परा बहुत प्राचीन है। गोपथ ब्राह्मण में धातु प्रातिपदिक, आख्यात, लिङ्ग, विभक्ति, वचन, प्रत्यय, स्वर आदि के विषय में उल्लेख है" -**ओङ्कारं पृच्छामः, को धातुः, किं प्रातिपदिकं, किं नामाख्यातं, किं लिङ्गं, किं वचनं, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वर उपसर्गो निपातः, किं वै व्याकरणं, को विकारः, कति मात्रः, कति वर्णाः, कत्यक्षरः, कति पदः, कः संयोगः, किं स्थाननादानुकरणम्"**॥ पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती आपिशलि और काश्यप आदि दस वैयाकरणों का उल्लेख किया है। कुछ अन्य प्राचीन वाङ्मय में इन्द्र तथा महेश्वर आदि पन्द्रह वैयाकरणों का उल्लेख है, किन्तु पूर्ण और सुव्यवस्थित व्याकरण का निर्धारण पाणिनि के काल से ही हुआ।

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।

सारस्वतं चापिशलं शाकल्यं पाणिनीयकम्॥

पाणिनीय व्याकरण की परिधि में वैदिक और लौकिक दोनों ही क्षेत्र आ जाते हैं। अष्टाध्यायी में वैदिक व्याकरण से सम्बद्ध प्रायः 500 सूत्र हैं। महर्षि पाणिनि ने लगभग 4000 अल्पाक्षर सूत्रों के द्वारा संस्कृत भाषा का नितान्त वैज्ञानिक व्याकरण प्रस्तुत किया है। पाणिनि के ग्रन्थ में आठ अध्याय होने के कारण यह 'अष्टाध्यायी' नाम से प्रसिद्ध है।

निरुक्त-

सायणाचार्य के अनुसार अर्थज्ञान की दृष्टि से पदों के समूहों का जहाँ स्वतन्त्र रूप से कथन किया जाता है, यथा- **'अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्'।** निरुक्त में वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति प्राप्त होती है। निरुक्त को वेद-पुरुष का श्रोत्र) कान (कहा जाता है **'निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते'।** निरुक्त की निघण्टु की टीका में वेद के कठिन शब्दों का समुच्चय मिलता है। निघण्टु पर ही आधारित यास्करचित 'निरुक्त' है। वर्तमान में यास्करचित 'निरुक्त' ही है, यह वेदाङ्ग का उपलब्ध प्रतिनिधि-ग्रन्थ है। यास्क के उपलब्ध निरुक्त में बारह निरुक्तकारों के नाम एवं मतों का निर्देश मिलता है लेकिन 'दुर्गाचार्यवृत्ति' टीकाकार दुर्गाचार्य ने चौदह निरुक्तकारों का वर्णन किया है।

यास्क कृत निरुक्त में बारह (12) अध्याय हैं, अन्त में दो (2) अध्याय परिशिष्ट रूप में प्राप्त होते हैं। निरुक्त पर दुर्गाचार्य की 'दुर्गाचार्यवृत्ति' टीका विस्तृत रूप में मिलती है। यास्क के निरुक्त में निघण्टुगत2 3.0 शब्दों के निर्वचनों को धात्वर्थमूलक प्रक्रिया से स्पष्ट किया गया है, इसके अतिरिक्त यास्क ने अन्य बहुसंख्यक शब्दों की व्युत्पत्तियाँ भी दी हैं। इस प्रकार निरुक्त में 1771 शब्दों के निर्वचन उपलब्ध होते हैं।

यास्क के निरुक्त में पाँच प्रतिपाद्य विषय हैं -वर्णागम, वर्ण-विपर्यय, वर्ण-विकार, वर्ण-नाश और धातुओं का अनेक अर्थों में प्रयोग-

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।

धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्॥

स्कन्दस्वामी, वेङ्कटमाधव और सायण आदि भाष्यकारों ने भी निरुक्तशास्त्र के प्रणेता यास्क का वर्णन किया है।

छन्द-

वैदिक मन्त्रों के सम्यक् उच्चारण के लिए छन्दों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। सर्वानुक्रमणीकार कात्यायन के अनुसार जो व्यक्ति ऋषि, देवता और छन्दों को जाने बिना वेदाध्ययन करता है, उसका प्रत्येक कार्य निष्फल ही होता है-

" यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वा अध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्तं वा पात्यते वा पापीयान् भवति। (सर्वानुक्रमणी 1.1)

छन्दों से वेदों को गति मिलती है, क्योंकि छन्दस् नामक वेदाङ्ग की कल्पना वेदपुरुष के पादों के रूप में है" -**छन्दः पादौ तु वेदस्य**)"पाणिनीय शिक्षा4 .1(। ब्राह्मण-वाङ्मय, शाङ्खायन श्रौतसूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य, सामवेदीय निदानसूत्र, पिङ्गल प्रणीत छन्दःसूत्र तथा कात्यायन एवं अन्य आचार्यों के द्वारा प्रणीत छन्दोऽनुक्रमणियों में विविध छन्दोविषयक विचार प्रदत्त हैं। ऋक्प्रातिशाख्य के16 वें से 18वाँ पटल विशेष उपादेय है। इस वेदाङ्ग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है पिङ्गलाचार्य कृत 'छन्दःसूत्र' । यह ग्रन्थ सूत्ररूप में आठ अध्यायों में उपलब्ध है। आरम्भ से चतुर्थ अध्याय के सप्तम सूत्र तक वैदिक छन्दों के लक्षण दिये गये हैं और शेष अध्यायों में लौकिक छन्दों का वर्णन है।

प्राचीन आचार्यों ने 1 अक्षर से लेकर 104. अक्षर तक छन्दों का विधान अपने वाङ्मय में किया है। वैदिक छन्दों की सर्वमान्य विशेषता यह है कि वे अक्षरों की गणना पर आधारित होते हैं। सर्वानुक्रमणी में कात्यायन ने इसीलिए अक्षर-परिमाण को ही छन्द बताया है - **'यदक्षरपरिणामं तच्छन्दः'।**)सर्वानुक्रमणी(

लौकिक छन्दों में गुरु, लघु गण-पद्धति और मात्राओं की संख्या का विशेष महत्त्व है। इसके विपरीत वैदिक छन्दों में गुरु, लघु, मात्राओं और गण-पद्धति की कोई विशेष अवधारणा नहीं है। किन्तु उपोत्तम)अन्तिम से पहले वाले अक्षरों (की गुरुता और लघुता का महत्त्व अवश्य है। पाद संख्या की दृष्टि से भी वैदिक छन्दों और लौकिक छन्दों में विभिन्नता है। लौकिक छन्दों में चार पाद सुनिश्चित हैं, जबकि वैदिक छन्दों में एक से लेकर आठ पाद तक प्राप्त होते हैं। एक-दो अक्षरों के न्यूनाधिक्य से वैदिक छन्दों में विशेष अन्तर नहीं आता किसी छन्द में यदि एक अक्षर कम हो तो 'निचृत् 'तथा एकाक्षर अधिक होने पर 'भूरिक्'

विशेषण लगाते हैं। वैदिक छन्द के दो मुख्य भेद हैं -अक्षरगणनानुसारी तथा पादाक्षरगणनानुसारी। प्रमुख वैदिक छन्दों के नाम हैं -गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती।

"**यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः** "कहा गया है, अर्थात् अक्षरों के निश्चित क्रम से संख्या को छन्दस् नाम दिया गया है। वेद मुख्यतः परमात्मा की मन्त्रमयी वाणी है, नियत अक्षर परिमाणों के साथ श्रुत वाणी है, इसीलिए वेद को छन्दस् भी कहते हैं। ऋग्वेद में अर्थ अनुसार पादव्यवस्था एवं छन्द है। वेद में उपलब्ध छन्द प्रधानरूप से गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप् ,बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् ,जगती ,आदि सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इन छन्दों में गायत्री छन्दस् सर्वाधिक मन्त्रों में दृष्ट छन्द है, इसमें तीन पाद होते हैं, प्रत्येक पाद में 8 अक्षर, कुल मिलाकर 24. अक्षर होते हैं। निचृद् और भूरिक् इन दो भेदों से गायत्री छन्द में अक्षर न्यूनाधिक हो सकते हैं। वेदों के आनुपूर्वी एवं अक्षर रक्षण में छन्दों का विशेष स्थान एवं महत्त्व है।

ज्योतिष-

ज्योतींषि -ग्रहनक्षत्राणि अधिकृत्य कृतं शास्त्रं ज्यौतिषम्'।

ज्योतिष में नक्षत्रों का प्राधान्य होने से इसे 'नक्षत्रविद्या' के नाम से भी अभिहित किया गया है। इस शब्द का प्रयोग छान्दोग्योपनिषद् में प्राप्त होता है। ब्राह्मणोक्त दर्शपौर्णमास याग बिना ज्योतिष ज्ञान के सम्भव नहीं है।

यज्ञ का विधान विशिष्ट समय पर किया जाता है। जिस व्यक्ति को काल का ज्ञान है, वही यज्ञ का यथार्थ ज्ञाता है-

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्॥) आर्च ज्योतिषम्3 .6(

' काल-ज्ञान के बिना वेदविहित यज्ञादि कार्य सम्पन्न नहीं हो सकते। अतः पाणिनीय शिक्षा में ज्योतिष को वेद का 'चक्षु' कहा गया है- **"ज्योतिषामयनं चक्षुः"** (पाणिनीय शिक्षा 4.1)। ज्योतिष समग्र वेदाङ्गों में मूर्धा (शिर) स्थानीय है- **'वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्'**।

वेदाङ्ग ज्योतिष ग्रन्थ -आर्च ज्योतिष में में4 .4., याजुष ज्योतिष में3 .6 और और आथर्वण ज्योतिष। में16 2 श्लोक उपलब्ध होते हैं।

इसके तीन स्कन्ध हैं- सिद्धान्त, संहिता तथा होरा। वेदाङ्ग ज्योतिष में पाँच वर्षों का एक युग माना गया है। यथा- -संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर और वत्सर। दो अयन हैं -उदगयन और दक्षिणायन। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर छः ऋतु हैं तपः (माघ), तपस्य (फाल्गुन), मधु (चैत्र), माधव (वैशाख), शुक्र (ज्येष्ठ), शुचि (आषाढ), नभः (श्रावण), नभस्य (भाद्र), इष (आश्विन), ऊर्ज (कार्तिक), सहः (मार्गशीर्ष) और सहस्य (पौष) बारह मास हैं। शुक्ल और कृष्ण पक्ष दो पक्ष हैं। शुक्लपक्ष में 15. और कृष्णपक्ष में 15. तिथियाँ हैं।

वेदों के ज्ञान में सहायता लिए वेदाङ्गों का अध्ययन आवश्यक माना गया है। मन्त्रों के उचित उच्चारण हेतु शिक्षा का, यज्ञयागादि अनुष्ठान के लिए कल्प का, शब्दशास्त्र के लिए व्याकरणशास्त्र का, निर्वचन के लिए निरुक्त का, वैदिक छन्दों के ज्ञान के लिए छन्दों का और यागादि के का ज्ञान के लिए ज्योतिष का ज्ञान होना परमावश्यक है।

2.2 रामायण- वाल्मीकि मुनि विरचित रामायण महाकाव्य लौकिक साहित्य है। रामायण में सात काण्ड हैं और 24000 श्लोक हैं। अतः चतुर्विंशतिसाहस्त्री संहिता" इति रामायण का नाम है।

काण्ड	सर्गा	वर्णित विषय
1. बालकाण्ड	77	रामजन्म, किशोर व कौमारावस्था का वर्णन, राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ वन गमन और राम का सीता के साथ विवाह।
2. अयोध्याकाण्ड	119	कैकेय की प्रेरणा दशरथ का राम को वनवास, दशरथ की मृत्यु, भरत का चित्रकूट प्रयाण और राम की पादुका नयन आदि ।

3. अरण्यकाण्डम्	75	राम-सीता व लक्ष्मण का वन में निवास, राक्षसों का संहार, रावण के द्वारा सीता अपहरण।
4. किष्किन्धाकाण्डम्	67	सीता अन्वेषण, सुग्रीव –राम की मित्रता एवं बालि हनन
5. सुन्दरकाण्डम्	68	हनुमान् का लंका गमन, सीता से सम्भाषण, लङ्कादहन, किष्किन्धा आगमन, राम को सीता की सूचना।
6.युद्धकाण्डम्	128	रावण के युद्ध। रावण का संहार, लङ्का में विभीषण का राज्याभिषेक, राम-सीता और लक्ष्मण का अयोध्या गमन, राम का राज्याभिषेक आदि।
7. उत्तरकाण्डम्	111	सीता को वन में भेजना। वाल्मीकि के आश्रम में लव-कुश जन्म, अश्वमेध यज्ञ, लव-कुश का रामायण गान, सीता का रसातल प्रवेश।

रामायण से आद्य श्लोक -

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता महाभारत के भीष्म पर्व (षष्ठ पर्व) में वर्णित है। इसमें यह 25वें से 42वें अध्याय तक वर्णित है। इसके रचयिता महर्षि वेदव्यास है, इसमें कुल 18 अध्याय तथा 700 श्लोक हैं।

गीता का अध्यायों के अनुसार वर्णित विषय

1. अर्जुनविषादयोग 47 वीर-परिचय, शङ्खध्वनि, अर्जुन द्वारा सैन्य निरीक्षण व मोह

2. सांख्ययोग 72 कृष्ण-अर्जुनसंवाद, निष्कामकर्मयोग, स्थितप्रज्ञ/स्थितधी का वर्णन, आत्मवर्णन

3. कर्मयोग 43 अनासक्त कर्म, लोकसंग्रह की अवधारणा।

4. ज्ञानकर्मसंन्यासयोग 42 कर्म, अवतारवाद, चौदह यज्ञ।

5. कर्मसंन्यासयोग 29 सांख्ययोगी व कर्मयोगी के लक्षण।

6. आत्मसंयमयोग 47 सगुण-निर्गुण, भक्तियोगी।

7. ज्ञानविज्ञानयोग 30 सर्वव्यापकता

8. अक्षरब्रह्मयोग 38 सगुण व निर्गुण भक्ति, शुक्ल व कृष्ण मार्ग।

9. राजविद्याराजगुह्ययोग 34 उत्पत्ति व प्रलय का वर्णन।

10. विभूतियोग 42 विश्वरूपदर्शनयोग

11. विश्वरूदर्शनयोग 55 विराट् रूप दर्शन और चतुर्भुज दर्शन।

12. भक्तियोग भगवत्प्राप्ति के चार उपाय व सिद्धभक्तों के 39 लक्षण। विभूति व योग शक्ति।

13. क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग 34 ज्ञान-ज्ञेय, क्षेत्र।

14. गुणत्रयविभागयोग 27 तीनों गुणों का विभाग।

15. पुरुषोत्तमयोग 20 जीवात्मा व परमेश्वर का स्वरूप।

16. दैवासुरसम्पद्विभागयोग 24 दैवी और आसुरी सम्पत्ति का वर्णन।

17. श्रद्धात्रयविभागयोग 28 यज्ञ, तप, दानादि का वर्णन।

18. मोक्षसंन्यासयोग 78 सांख्य, वर्णधर्म का फल तथा गीता का माहात्म्य।

• भारतीय दार्शनिक श्री अरविन्दो ने गीता को महासंगीत की उपाधि प्रदान की है।

मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को गीता जयन्ती मनाई जाती है।

रामचरित मानस का परिचय

परिचय :-

श्रीतुलसीदास रचित अवधी भाषा में रामचरितमानस 7 काण्डों में विभाजित है। रामचरितमानस में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को आदर्श रूप में दर्शाया गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने अनुपम शैली में दोहों, चौपाइयों, सोरठों और छंदों के द्वारा भगवान श्रीराम के जीवन के प्रसंगों का वर्णन किया है, इसका उद्देश्य है रामचरितमानस को पढ़कर समझ कर मन से विकारमुक्त होकर परम ज्ञानी बनना।

- बालकाण्ड
- अयोध्याकाण्ड
- अरण्यकाण्ड
- किष्किन्धाकाण्ड
- सुन्दरकाण्ड
- लंकाकाण्ड (युद्धकाण्ड)
- उत्तरकाण्ड

बालकाण्ड सबसे बड़ा और किष्किन्धाकाण्ड सबसे छोटा काण्ड है।

1. बाल काण्ड –इसमें श्रीराम के जन्म और बाल्यकाल की कथाओं, बाल लीलाओं, विश्वामित्र द्वारा शिक्षा पाकर राक्षसों का विनास और का शिव धनुष को तोड़कर विवाह का वर्णन है।
2. अयोध्या काण्ड - श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारी का वनवास में परिवर्तन अर्थात् मंथरा के उकसाने पर कैकेयी द्वारा राम को वनवास भेजने की हठ, तथा प्रस्थान, दशरथ की मृत्यु, राम-भरत मिलाप, भरत का राम की चरण-पादुका को सिंहासन पर रखकर राज्य की रक्षा का वर्णन है।
3. अरण्य काण्ड – वनवास काल में श्रीराम की तपस्या और मुनियों की सहायता और शबरी के साथ राम की भेंट, दण्डकवन में शूर्पणखा का राम से प्रणय के लिए निवेदन, राम मना करने पर पुनः से निवेदन लक्ष्मण द्वारा उसको दण्ड देना, मारीच (स्वर्ण मृग) का आना रावण द्वारा सीता-अपहरण, जटायु के द्वारा सीता की रक्षा का कल्याणकारी वर्णन है।
4. किष्किंधा काण्ड - हनुमान और सुग्रीव से मित्रता का अनौखा मिलन, सुग्रीव का राज्यारोहण।

5. सुन्दर काण्ड – हनुमान का लंका की अशोक वाटिका में जाकर सीता को श्रीराम का संदेश देना और अक्षय कुमार का वध , विभीषण से मिलना और लंका दहन करना।
6. लंका काण्ड - लंका पर चढ़ाई कर, युद्ध, रावण वध और विभीषण का राज्याभिषेक, पुष्पक विमान से अयोध्या के लिए आगमन।
7. उत्तर काण्ड – दीपोत्सव, अयोध्या लौटकर राज्याभिषेक राज्य की लोककल्याणकारी योजनाओं का वर्णन है।

इकाई:3. विविध स्तोत्रों का परिचय

स्तूयते अनेन इति स्तोत्रम् अर्थात् किसी देवी-देवता की स्तुति में गाए गए मन्त्रों को स्तोत्र कहा जाता है। पूजा पद्धति में स्तोत्र पाठ के द्वारा आराध्य देवी-देवता को प्रसन्न करने का विधान है। भारत में अत्यन्त प्रारम्भिक काल से ही 'धर्म' को अतिविशिष्ट स्थान प्राप्त था। धर्म और अध्यात्म के अनुप्रयोग के लिए दार्शनिक चिन्तन ही कल्याण और सुख के मूल स्रोत थें। संस्कारों के कारण भारतीयों में भगवान् के प्रति समर्पण भावना उत्पन्न हुई। इसी कारण स्तोत्र साहित्य का कवियों और साधकों ने अपने आराध्य के चरणों में शब्द प्रसून अर्पित किए वे स्तोत्र कहलाते हैं। मनुष्य का मन चंचल है सदैव घृणा, द्वेष, जुगुप्सा, ईर्ष्या, क्रोध और मोह के चिन्तन करता रहता है; वही स्रोत्रों से मन प्रेम, त्याग, दया, करुणा, सहनशीलता प्राप्त कर स्वार्थ की उपेक्षा दूसरों की सहायता करने को उद्यत हो जाता है। चराचर संसार में व्यक्ति अपने इष्ट देव के सम्मुख हृदय पूर्वक अपनी भावना के ताले विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, दुर्गा, स्कन्द के सम्मुख स्तोत्र से खोल देता है। इस स्तोत्र प्रभाव से साधक के मन में अनेकानेक प्रकार के भाव और तपस्या से आनन्दानुभूति प्राप्त कर असफलताओं पर सफलता प्राप्त करता है।

3.1.गणपतिअथर्वशीर्ष-

अथर्ववेद के परिशिष्ट में गणपत्यथर्वशीर्ष सूक्त का उल्लेख है। इस सूक्त में 15 मन्त्र हैं।

ॐ भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवासस्तनूभिर्व्यशेम देवहितँय्यदायुः ॥(ऋग्वेद 1.89.8)
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः प्पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्ताऽसि । त्वमेव केवलं धर्ताऽसि। त्वमेव केवलं हर्ताऽसि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्माऽसि। त्वं साक्षादात्माऽसि नित्यम्। ऋतं वच्मि। सत्यं वच्मि । अव त्वं माम्। अव

वक्तारम्। अव श्रोतारम्। अव दातारम्। अव धातारम्। अवानूचानमव शिष्यम्। अव पश्चात्तात्। अव पुरस्तात्। अवोत्तरात्तात्। अव दक्षिणात्तात्। अव चोर्ध्वात्तात्। अवाधरात्तात्। सर्वतो मां पाहि पाहि समन्तात्। त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः। त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयः। त्वं सच्चिदानन्दा-

द्वितीयोऽसि। त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि। सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति। त्वं भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः। त् चत्वारि वाक्पदानि।। त्वं गुणत्रयातीतः । त्वमवस्थात्रयातीतः। त्वं देहत्रयातीतः। त्वं कालत्रयातीतः। त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्। त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिद्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवःसुवरोम्।। गणादी पर्वमुच्चार्य वर्णादीं दनन्तरम्। अनुस्वारः परतरः। अर्धेन्दुलसितम्। तारेण रुद्धम्। एतत्तव मनुस्वरूपम्। गकारः पूर्वरूपम्। अकारो मध्यमरूपम्। अनुस्वारश्चान्त्यरूपम्। बिन्दुरुत्तररूपम्। नादः सन्धानम्। स॰हिता सन्धिः। सैषा गणेशविद्या। गणक ऋषिः। निचृद्गायत्री छन्दः। श्रीमहागणपतिर्देवता।। ॐ गं गणपतये नमः। एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्तीः प्रचोदयात् ।। एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्। रदं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्।। रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्। रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्।। भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्। आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम् ।। एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।। नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः।। एतदथर्वशीर्षं योऽधीते। स ब्रह्मभूयाय कल्पते । ससर्वविघ्नैर्नबाध्यते। स सर्वतः सुखमेधते। स पञ्चमहापापात्प्रमुच्यते।। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायम्प्रातः प्रयुञ्जानोऽपापो भवति। सर्वत्राधीयानोऽपविघ्नो भवति । धर्मार्थकाममोक्षं च विन्दति।। इदमथर्वशीर्षमशिष्याय न देयम्। यो यदि मोहाद्दास्यति। स पापीयान्भवति ।। सहस्रावर्तनाद्यं यं काममधीते। तं तमनेन साधयेत्।। अनेन गणपतिमभिषिञ्चति। स वाग्मी भवति।। चतुर्थ्यामनश्नञ्जपति। स

विद्यावान्भवति।। इत्यथर्वणवाक्यम्।। ब्रह्माद्यावरणं विद्यान्न बिभेति कदाचनेति।। यो दूर्वाङ्कुरैर्यजति । स वैश्रवणोपमो भवति।। यो लाजैर्यजति। स यशोवान् भवति । स मेधावान् भवति।। यो मोदकसहस्रेण यजति। स वाञ्छितफलमवाप्नोति॥ यः साज्यःसमिद्भिर्यजति । स सर्वं लभते स सर्वं लभते ।। अष्टौब्राह्मणान्सम्यग्ग्राहयित्वा सूर्यवर्चस्वी भवति ।। सूर्यग्रहे महानद्यां प्रतिमासन्निधौ वा जप्त्वा सिद्धमन्त्रो भवति।। महाविघ्नात्प्रमुच्यते । महादोषात्प्रमुच्यते। महापापात्प्रमुच्यते।। महाप्रत्यवायात्प्रमुच्यते। स सर्वविद्भवति स सर्वविद्भवति । य एवं वेद।। इत्युपनिषत् ।। इति गणपत्यथर्वशीर्षम्।

गणपति अथर्वशीर्ष

1. हे! गणेश आपको प्रणाम, आप ही सजीव प्रत्यक्ष रूप हो, आप ही कर्म एवं कर्ता भी हो, आप ही धारण करने वाले, और आप ही हरण करने वाले संहारी हो। आप में ही समस्त ब्रह्मण व्याप्त हैं आप ही एक पवित्र साक्षी हो।
2. आप मेरे हो मेरी रक्षा करें, मेरी वाणी की रक्षा करें। मुझे सुनने वालों की रक्षा करें। मुझे देने वाले की रक्षा करें, मुझे धारण करने वाले की रक्षा करें, वेद- उपनिषदों एवं उनके वाचकों की रक्षा करें साथ- साथ उनसे ज्ञान लेने वाले शिष्यों की रक्षा करें। चारों दिशाओं पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण से सम्पूर्ण रक्षा करें।
3. आप वाङ्मय हैं, आप ही चिन्मय हैं, आप ही आनन्दमय ब्रह्मज्ञानी हैं, आप ही सच्चिदानन्द के अद्वितीय रूप हैं , आप ही प्रत्यक्ष कर्ता हैं, आप ही ब्रह्म हैं, आप ही ज्ञान-विज्ञान के दाता हों।
4. इस जगत के जन्म दाता आ ही है, आपने ही सम्पूर्ण विश्व को सुरक्षा प्रदान की हैं और सम्पूर्ण संसार आप में ही निहित हैं। आपको ही सम्पूर्ण विश्व ही दिखाई देता हैं। आप ही जल, भूमि, आकाश और वायु हैं आ चारों दिशा में व्याप्त हैं।
5. आप सत्व,रज और तम तीनों गुणों से भिन्न हो। आप तीनों कालों भूत, भविष्य और वर्तमान से पृथक हो। आप तीनों देह से भिन्न हैं। आप जीवन के मूल आधार में विराजमान हो। आप में ही तीनों धर्म, उत्साह, मानसिक शक्तियाँ व्याप्त हैं। आपको ही योगीजन सदैव ध्यान करते हैं। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र,इन्द्र,अग्नि,वायु,सूर्य एवं चन्द्र हो। आप में ही सगुण, निर्गुणादि गुणों का समावेश है।
6. गण" का उच्चारण करने पश्चात् आदिवर्ण अकार का उच्चारण करें। ॐ कार का उच्चारण करें। यह समस्त मन्त्र ॐ गं गणपतये नमः का भक्ति से उच्चारण करें।
7. एकदन्त, वक्रतुण्ड का हम ध्यान करते हैं। हमें इस सद मार्ग पर चलने की भगवन् प्रेरणा दें।
8. भगवान गणेश एकदन्त चार भुजाओं वाले हैं जिसमे वह पाश,अंकुश, दन्त और वर मुद्रा रखते हैं उनके ध्वज पर मूषक हैं। यह लाल वस्त्र धारी हैं। चन्दन का लेप लगा हैं एवं लाल पुष्प धारण करते हैं। सभी की मनोकामना पूरी करने वाले जगत में सभी जगह व्याप्त हैं। सृष्टि के रचियता हैं। जो इनका ध्यान सच्चे हृदय से करता है वह महायोगी हैं।
9. व्रातपति, गणपति को प्रणाम, प्रथम पति को प्रणाम, एकदंत को प्रणाम, विघ्नविनाशक, लम्बोदर, शिवतनय श्री वरद मूर्ती को प्रणाम।
10. इस अथर्वशीष का पाठ करता हैं वह विघ्नों से दूर रहता हैं। वह सदैव ही सुखी रहता हैं, वह पंचमहा पापों से दूर हो जाता हैं। सन्ध्या में पाठ करने से दिन के दोष दूर होते हैं। प्रातः पाठ करने से रात्रि के दोष दूर होते हैं। हमेशा पाठ करने वाला दोष रहित रहता हैं एवं साथ ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष पर विजयी होता हैं। इसका एक हजार बार पाठ करने से उपासक सिद्धि प्राप्त कर योगी बन जाता है।
11. जो इस मन्त्र के उच्चारण के साथ गणेश जी का अभिषेक करता हैं उसकी वाणी उसकी दास हो जाती हैं। जो चतुर्थी के दिन उपवास कर जप करता हैं विद्वान बनता हैं। जो ब्रह्मादि आवरण को जानता है वह भय मुक्त रहता हैं।

12. जो दुर्वाङ्कुरों द्वारा यजन करता हैं वह कुबेर के समान बनता हैं जो लाजा के द्वारा यजन करता हैं वह यशस्वी एवं मेधावी बनता हैं। जो मोदकों के द्वारा यजन करता हैं वह उसको मन वाच्छित फल प्राप्त करता हैं। जो घृताक्त समिधा के द्वारा हवन करता हैं वह सब कुछ प्राप्त करता हैं।

13. जो आठ ब्राह्मणों को उपनिषद का ज्ञाता बनाता हैं वे सूर्य के सामान तेजस्वी होते हैं। सूर्य ग्रहण के समय नदी तट पर अथवा अपने इष्ट के समीप इस उपनिषद का पाठ करे तो सिद्धी प्राप्त होती हैं जिससे जीवन के विघ्न दूर होते हैं एवं पाप कटते हैं तथा वह विद्वान हो जाता हैं। यह ऐसी ब्रह्मविद्या हैं।

14. हे ! गणपति हमें ऐसे शब्द कानों में सुनाई दे जो हमें ज्ञान दें और निन्दा तथा दुराचार से दूर रखें। हम निरन्तर समाज सेवा में लगे रहकर बुरे कर्मों से दूर रहें और सदैव भगवान की भक्ति करते रहें। हमें सदैव स्वस्थ रखें तथा आपकी कृपा सदा बनी रहे। विलास से दूर रहें। हमारे तन, मन और धन में ईश्वर का वास हो जो हमसे सदैव सुकर्म ही करवाए ऐसी प्रार्थना करते हैं ।

15. चारों दिशाओं में जिसकी कीर्ति व्याप्त हैं वह देवों के देव हैं एवं बुद्धि का अपार सागर हैं, जिनमें बृहस्पति के सामान शक्तियाँ हैं। उन्हीं के मार्गदर्शन से कर्म को गति मिलती हैं और उससे समस्त मनुष्यों का भला होता हैं।

3.2. आदित्यहृदय- अगस्त्य ऋषि द्वारा भगवान् श्रीराम को युद्ध में रावण पर विजय प्राप्ति हे इस स्तोत्र को सूर्य देव की उपासना के लिया निर्देश दिया था कि एकाग्रचित होकर देवाधिदेव जगदीश्वर आदित्यदेव का जप करने से तुम युद्ध में अवश्य विजय पाओंगे । इसमें 31 श्लोक हैं और वाल्मीकि रामायण का 105 सर्ग है। आदित्य हृदय स्तोत्र के नियमित पाठ से मानसिक कष्ट, हृदय रोग, अशान्ति, शत्रु कष्ट और असफलताओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

ॐ ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम् ।रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ॥1॥

दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम् । उपगम्याब्रवीद् राममगस्त्यो भगवांस्तदा ॥2॥

राम राम महाबाहो श्रृणु गुह्यं सनातनम् । येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसे ॥3॥

आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम् । जयावहं जपं नित्यमक्षयं परमं शिवम् ॥4॥

सर्वमंगलमांगल्यं सर्वपापप्रणाशनम् । चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥5॥

रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम् । पुजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम् ॥6॥

सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावन:। एष देवासुरगणांल्लोकान् पाति गभस्तिभि: ॥7॥

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिव: स्कन्द: प्रजापति:।महेन्द्रो धनद: कालो यम: सोमो ह्यापां पतिः ॥8॥

पितरो वसव: साध्या अश्विनौ मरुतो मनु:। वायुर्वन्हिः प्रजा प्राण ऋतुकर्ता प्रभाकर: ॥9॥

आदित्य: सविता सूर्य: खग: पूषा गभस्तिमान् ।सुवर्णसदृशो भानुर्हिरण्यरेता दिवाकर: ॥10॥

हरिदश्व: सहस्रार्चि: सप्तसप्तिर्मरीचिमान्। तिमिरोन्मथन: शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्ड अंशुमान् ॥11॥

हिरण्यगर्भ: शिशिरस्तपनो भास्करो रवि:। अग्निगर्भोऽदिते: पुत्रः शंखः शिशिरनाशन: ॥12॥

व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजु: सामपारग:। घनवृष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथीप्लवंगमः ॥13॥

आतपी मण्डली मृत्यु: पिंगल: सर्वतापन:। कविर्विश्वो महातेजा: रक्त: सर्वभवोद्भव: ॥14॥

नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वभावन:। तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन् नमोऽस्तु ते ॥15॥

नम: पूर्वाय गिरये पश्चिमायाद्रये नम:।ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नम: ॥16॥

जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नम:। नमो नम: सहस्रांशो आदित्याय नमो नम: ॥17॥

नम उग्राय वीराय सारंगाय नमो नम:। नम: पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते ॥18॥

ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूर्यायादित्यवर्चसे। भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नम: ॥19॥

तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने। कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नम: ॥20॥

तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे। नमस्तमोऽभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे ॥21॥

नाशयत्येष वै भूतं तदेव सृजति प्रभु:। पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभि: ॥22॥

एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठित:। एष चैवाग्निहोत्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम् ॥23॥

वेदाश्च क्रतवश्चैव क्रतुनां फलमेव च। यानि कृत्यानि लोकेषु सर्व एष रवि प्रभु: ॥24॥

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च। कीर्तयन् पुरुष: कश्चिन्नावसीदति राघव ॥25॥

पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम्। एतत्त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसि ॥26॥

अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं जहिष्यसि। एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जगाम स यथागतम् ॥27॥

एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत् तदा॥ धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान् ॥28॥

आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान्। त्रिराचम्य शूचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान् ॥29॥

रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा जयार्थं समुपागतम्। सर्वयत्नेन महता वधेतस्य धृतोऽभवत् ॥30॥

अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं मुदितमना: परमं प्रहृष्यमाण:। निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति ॥31॥

इति श्रीवाल्मीकीये रामायणे युद्धकाण्डे अगस्त्यप्रोक्तमादित्यहृदयस्तोत्रं सम्पूर्णम्

3.3.देव्यपराधक्षमापणस्तोत्र- आद्य शंकराचार्य के सम्पूर्ण भारतवर्ष में तीर्थाश्रमों की स्थापना की; विभिन्न उपनिषदों पर सर्वाधिक प्रामाणिक भाष्य लिखा; दार्शनिक क्षेत्र में अद्वैत वेदान्त को सर्वात्मना

प्रतिष्ठापित किया; साथ ही निर्गुण-निराकार ब्रह्म की सुगम प्राप्ति के लिए सगुण साकार ब्रह्म के विविध स्वरूपों शिव, गणेश, देवी, विष्णु, हनुमान् आदि की स्तुति में सुन्दर पदावली, सरस शैली, गहन भक्ति और तीव्र वैराग्य भावना से समन्वित विविध स्तोत्रों की भी रचना की थी। वर्तमान में शंकराचार्य के 'शिवापराधक्षमापणस्तोत्र', 'द्वादशपंजरिकास्तोत्र', 'देव्यपराधक्षमापणस्तोत्र', 'आनन्दलहरी', 'भवान्यष्टक', 'सौन्दर्यलहरी', 'चर्पटपंजरिकास्तोत्र', 'भजगोविन्दम्' आदि स्तोत्र हैं। यहाँ पर हम देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र का अध्ययन करेंगे-

शंकराचार्य के स्तोत्रों में हृदय की दीनता, भक्त की सर्वस्व समर्पणता तथा भक्ति का अबाध प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। देवी भगवती के प्रति कवि की भक्ति एवं आत्मसमर्पण था-

अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

।।श्री गणेशाय नमः।। हरिः ॐ

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुति कथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥ 1 ॥
विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् ।
तदेतत्क्षतव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥2॥
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥3॥
जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया ।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरूषे कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ 4 ॥

परित्यक्ता देवाविविधविधसेवाकुलतया मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता निरालम्बो लम्बोदर जननि कं यामि शरणम् ॥5॥

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा निरातंको रंको विहरति चिरंकोटिकनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं जनःको जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥ 6 ॥
चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।

कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥ 7 ॥

न मोक्षस्याकांक्षा न च विभववांछापि च न मे न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः ।

अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै मृडानी रुद्राणी शिवशिवभवानीति जपतः ॥ 8 ॥

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः किं वृक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः ।

श्यामे त्वमेव यदि किंचन मय्यनाथे धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥ 9 ॥

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि।

नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥ 10 ॥

जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणाऽस्ति चेन्मयि।

अपराधपरम्परावृतं नहि माता समुपेक्षते सुतम्॥ 11 ॥

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा नहि।

एवं ज्ञात्वा महादेवि यथा योग्यं तथा कुरु ॥12॥

इतिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं

देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

इस प्रकार संसार की नश्वरता, आसक्ति एवं मोह की निःसारता तथा पुनर्जन्म के चक्र की कष्टमयता को शंकराचार्य ने अत्यन्त ही भावप्रवणता के साथ वर्णन संगीतमय किया है।

3.4. शिवमहिम्नस्तोत्रम्-

सम्पूर्ण स्तोत्रसाहित्य में कवि पुष्पदन्ताचार्य रचित 'शिवमहिम्नस्तोत्र' विशेषता महत्त्वपूर्ण माना जाता है। राजशेखर (875-925 ई.) ने अपने काव्यमीमांसा नामक ग्रन्थ में इनका एक पद्य उद्धृत किया है, अतः पुष्पदन्ताचार्य का समय इससे पूर्व ही होना चाहिए। इसी आधार पर विद्वज्जन इनका समय नवीं शती का पूर्वार्थ सिद्ध करते हैं। आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने इस स्तोत्र पर जो टीका लिखी है उसमें कवि के सम्बन्ध में इस प्रकार की अनुश्रुति दी है कि 'इसका लेखक गन्धर्वराज था जो शिव का गण था। किसी अपराध से शक्तिहीन होने पर उस गन्धर्वराज ने पुष्पदन्त के रूप में जन्म लिया और इस स्तोत्र की रचना के द्वारा परम कारुणिक शिव को प्रसन्न करके पुनः अपने पूर्व पद को प्राप्त किया।

'शिवमहिम्नस्तोत्र' शिखरिणी छन्द में लिखा भावपूर्ण काव्य है। इस स्तोत्रकाव्य के दार्शनिक महत्त्व के कारण भारत के प्रायः सभी प्रधान मठों में सन्ध्याकालीन साधना के समय इसका नित्य पारायण किया जाता है। इस स्तोत्रकाव्य की शैली तथा विषय चयन में ऐसा गाम्भीर्य एवं आकर्षण है कि सहस्राधिक वर्षों से श्रेष्ठ विद्वानों तथा साधकों एवं उपासकों में इसका समान समादर रहा है। कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की नान्दी में शिव की जिन आठ प्रत्यक्ष मूर्तियों का वर्णन किया है, कवि पुष्पदन्त उनके साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व को ही शिवमय मानते है-

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-

स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।

परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणतां बिभ्रतु गिरं

न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्वं न भवसि ॥

अर्थात् 'तुम सूर्य हो, तुम चन्द्रमा हो, तुम वायु हो, तुम अग्नि हो, तुम आकाश हो, तुम पृथिवी हो और तुम आत्मा हो इस प्रकार पण्डित जन तुमको अष्टमूर्ति में सीमित करके वर्णन करते हैं, किन्तु हम तो यही मानते हैं कि सम्पूर्ण जगत् में आपसे भिन्न कुछ नहीं है।

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धु पात्रे

सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं

तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥

'हे ईश! तुम समुद्र पात्र में नीलगिरि के सदृश स्याही हो, श्रेष्ठ कल्पतरु की शाखा लेखनी हो और वह विशाल पृथिवी कागज़ हो-इनको ग्रहण करके स्वयं देवी सरस्वती सदैव लिखती रहें, तो भी आपके गुणों का अन्त नहीं पा सकतीं।

शिवमहिम्न स्तोत्र में 43 श्लोक हैं चित्ररथ नाम का एक राजा था। राजा का उद्यान बहुत ही मनोहर था और इसमें सुंदर-सुंदर फूल लगे थे। राजा अपने उद्यानों के उन फूलों से प्रतिदिन भगवान शिव की पूजा –अर्चना करता था। एक दिन पुष्पदंत नामक एक गंधर्व बगीचे के मनोहर फूलों को देख मोहित हो गया

एवं उसने फूल ले लिए। गंधर्व के पास अदृश्य होने की दिव्य शक्ति थी। जिस कारण राजा के सैनिक उसे पकड़ नही सके। बगीचे के सभी फूल चोरी हो जाने के परिणामस्वरूप राजा भगवान शिव को फूल नहीं अर्पित कर सका। आखिर में राजा ने शिव निर्माल्य को अपने उद्यान में फैला दिया। शिव निर्माल्य में बिल्व पत्र और फूल आदि होते हैं। शिवजी को शिव निर्माल्य अतिप्रिय हैं और इन्हें शिवजी की पूजा में चढ़ाना पवित्र माना जाता है। पुष्पदंत जब फिर से आया तो वह भूलवश अंधेरे में शिव निर्माल्य पैर रख दिया, इससे भगवान शिव क्रोधित हो गए। पुष्पदंत से भगवान के क्रोध के कारण अपनी अदृश्य होने की दिव्य शक्ति भी चली गई। फिर पुष्पदंत ने भगवान शिव से गलती का बोध होने पर क्षमा प्रार्थना करते हुए पुष्पदंत ने शिवजी की महिमा को गाया। पुष्पदंत की यही महिमा प्रार्थना शिवमहिम्न स्तोत्र के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस स्तोत्र से भगवान शिव प्रसन्न हुए और उन्होंने पुष्पदंत की दिव्य शक्तियाँ पुन: लौटा दी। सच्ची श्रद्धा और विश्वास के साथ शिव महिम्न स्तोत्र का पाठ करने वाले व्यक्ति को भय, रोग या शोक दूर रहते है और उसकी समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

3.5. **मधुराष्टकम्-** इसकी रचना पुष्टिमार्ग के संस्थापक श्रीवल्लभाचार्य जी ने की थी। श्रीकृष्ण के बालरूप को मधुरता से मधुरतम रूप का मधुराष्टकं में वर्णन हैं। श्रीकृष्ण के प्रत्येक अंग, वचन, दृष्टि और लीला मधुर हैं। उनकी मधुरता से अन्य सजीव और निर्जीव वस्तुएँ भी मधुरता को प्राप्त कर लेते हैं।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥१॥
मधुराधिपते रखिलं मधुरं----
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपते रखिलं मधुरं ॥२॥
मधुराधिपते रखिलं मधुरं--
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥३॥

गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।

रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥४॥

करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।

वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपते रखिलं मधुरम्॥५॥

गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।

सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥६॥

गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम्।

दृष्टं मधुरं सृष्टं मधुरं मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥७॥

गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।

दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥८॥

मधुराधिपते रखिलं मधुरं...।।

3.6 सूर्य सूक्त (शुक्लयजुर्वेद)

शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा के 33 वें अध्याय में इस सूक्त का उल्लेख है। इस सूक्त में 17 मन्त्र हैं। 33वें अध्याय में 30 से 43 तक मन्त्र है। इस सूक्त के अनेक ऋषि द्रष्टा हैं यथा सौर्य विभ्राट्, प्रसकर्णव, अगस्त्य, श्रुतकक्ष, सुकक्षव, कुत्स, जमदग्नि और आङ्गिरस हिरण्यस्तूप। इस सूक्त के देवता सूर्य है तथा सूक्त में जगती, गायत्री, त्रिष्टुप्, बृहती, सतो बृहती इन छन्दों का प्रयोग किया गया है।

व्विभ्राड्बृहत्त्पिंबतु सोम्म्यम्मद्धायुर्द्दधंद्यज्ज्ञपंताववि॑ह्रुतम् ॥ व्वातंजूतो योऽअंभिरक्क्षंति
त्त्मनां प्प्रजाः पुंपोष पुरुधा व्विरांजति ॥ ३०॥
उदु त्त्यञ्ञातवेंदसन्देवंव्वंहन्ति केतवंः॥ दृशे व्विश्श्वांय सूर्य्यम् ॥ ३१ ॥
येनां पावक चक्क्षंसा भुरण्यन्तञ्जनाँ२॥ऽअनुं ॥ त्वंव्वरुण पश्श्यंसि ॥ ३२ ॥
दैव्व्यां वद्धर्य्यूऽआगंतुᳫ रथेंन सूर्य्यत्त्वचा ॥ मद्ध्वांयज्ज्ञᳫ समंञ्जाथे ॥
तम्प्रत्क्नथायंव्वेनश्चित्रन्देवानांम्॥ ३३॥
आ नऽइडांभिर्व्विदथें सुशस्ति व्विश्श्वानंरः सविता देवऽएंतु॥ अपि यथां युवानो मत्त्संथा

नो विश्वुञ्जगंदभिपित्त्वे मंनीषा॥ ३४ ॥

यदुद्य कच्चं वृत्रहन्नुदगांऽअभि सूर्य्य॥ सर्वुन्तदिन्द्र ते वशे ॥ ३५ ॥

तुरणिंर्व्विश्वदंर्शतो ज्योतिष्कृदंसि सूर्य्य॥ विश्वुमाभांसि रोचुनम् ॥ ३६ ॥

तत्सूर्य्यस्य देवुत्वन्तन्मंहित्वम्मुध्या कर्त्तोर्व्वितंतुᳯ सञ्जंभार॥ युदेदयुंक्क्त हुरितं÷ सुधस्त्थादाद्रात्री वासंस्तनुते सिुमस्मैं ॥ ३७ ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिुचक्षे सूर्य्यो रूपङ्कंणुते द्योरुपस्त्थे॥ अनुन्तमुन्यद्रुशंदस्य पाजं÷ कृष्णमुन्यद्धुरितुᳫसम्भरंन्ति॥ ३८ ॥

बण्णमुहाँ२॥ऽअंसि सूर्य्य बडांदित्त्य मुहाँ२॥ऽअंसि ॥ मुहस्ते सुतो मंहिुमा पंनस्यतेुद्धा देव मुहाँ२॥ऽअंसि ॥ ३९॥

बट्सूंर्य्य श्श्रवंसा मुहाँ२॥ऽअंसि सुत्रादेवमुहाँ२॥ऽअंसि॥ मुह्ना देवानांमसुर्य्य÷ पुरोहिंतो विभु ज्योतिुरदांब्भ्यम् ॥ ४० ॥

श्रायंन्तऽइव सूर्य्यंव्विश्वेदिन्द्रस्य भक्क्षत॥ वसूंनि जाते जनंमानुऽओजंसा प्रतिं भागन्न दींधिम ॥ ४१ ॥

अुद्या देवाऽउदिता सूर्य्यस्य निरᳯहंसᳫ पिपृुता निरंवुद्यात्॥ तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिंतिुᳫसिन्धुं÷ पृथिवीऽउत द्यौः ॥ ४२॥

आ कृष्णेन रजंसा वर्त्तमानो निवेुशयंन्नमृतुम्मर्त्त्यंञ्च॥ हिुरण्ययेन सविुता रथुेना देवो यांति भुवंनानि पश्श्यंन् ॥ ४३ ॥

1. वायु से प्रेरित आत्मा द्वारा जो महान् दीप्तिमान् सूर्य प्रजा की रक्षा एवं पालन-पोषण करते हैं और अनेक प्रकार से शोभा पाते हैं, वह अखण्ड आयु प्रदान करते हुए मधुर सोमरस का पान करें वह विशेषरूप से द्युलोक में सुशोभित है।

2. विश्व की दर्शन-क्रिया सम्पादित करने के लिए अग्निज्वाला स्वरूप उदीयमान सूर्यदेव को ब्रह्मज्योतियाँ ऊपर द्युलोक में उठाए हुए हैं।

3. हे पावक एवं वरुणरूप सूर्य! आप जिस दृष्टि से ऊर्ध्वगमन करने वालों को देखते हो, उसकी कृपा दृष्टि से सभी स्तोताओं को देखें।

4. हे दिव्य अश्विनीकुमारों! आप भी सूर्य की सी कान्तिवाले रथ में आएँ एवं हविष्य से यज्ञ को परिपूर्ण कर उसे ही जिसे ज्योतिष्मानों में चन्द्रदेव ने प्राचीन विधि से अद्भुत बनाया है।

5. यज्ञादि श्रेष्ठ क्रियाओं में अग्रणी रहने वाले और विपरीत पापादि का नाश करने वाले, श्रेष्ठ विस्तार वाले, श्रेष्ठ आसन पर स्थित, स्वर्ग के ज्ञाता आपको हम सनातन विधि से, पूर्ण विधि से, सामान्य विधि से तथा इस प्रस्तुत विधि से वरण करते हैं।

6. जल के निर्माण के समय यह ज्योतिमण्डल से आवृत चन्द्रमा अन्तरिक्षीय जल को प्रेरित करता है। इस जल समागम के समय ब्राह्मण सरल वाणी से चन्द्रमा की स्तुति करते हैं।

7. क्या यही आश्चर्य है कि स्थावर-जंगम जगत् की आत्मा, किरणों का पुञ्ज, अग्नि, मित्र और वरुण का नेत्ररूप यह सूर्य भूलोक, द्युलोक एवं अन्तरिक्ष को पूर्ण करता हुआ उदित होता है।

8. सुन्दर अन्नों वाले हमारे प्रशंसनीय यज्ञ में सर्वहितैषी सूर्यदेव आएँ। हे अजर देवों! आप लोग तृप्त हों और आगमनकाल में हमारे सम्पूर्ण गौ आदि पशुओं को बुद्धिपूर्वक तृप्त करें।

9. हे इन्द्र! हे सूर्य! आज आप जहाँ भी उदीयमान हो, वे सभी प्रदेश आप के अधीन हैं।

10. विश्व को अन्धकार से दूर करने वाले हे विश्व के प्रकाशक सूर्य! इस दीप्तिमान् विश्व को आप ही प्रकाशित करते हो।

11. सूर्यदेव का देवत्व तो यह है कि ये ईश्वररचित जगत् के मध्य स्थित हो समस्त ग्रहों को धारण करते हैं और आकाश से ही जब हरितवर्ण की किरणों से संयुक्त जाते हैं तो रात्रि सब के लिए अन्धकार का आवरण फैला देती है।

12. लोक के अङ्क में यह सूर्यदेव, मित्र और वरुण का रूप धारण कर सबको देखते हैं। अनन्त शुक्ल-देदीप्यमान इनका एक दूसरा अद्वैतरूप है। कृष्णवर्ण का एक दूसरा द्वैतरूप है, जिसे इन्द्रियाँ ग्रहण करती हैं।

13. हे सूर्यरूप परमात्मन्! आप सत्य ही महान् हैं। हे आदित्य! आप सत्य ही महान् हैं। महान् और सद्रूप होने के कारण आपकी महिमा का गान किया जाता है।

14. हे सूर्य! आप सत्य ही यश से महान् हैं। यज्ञ से महान् हैं एवं महिमा से महान् हैं। देवों के हितकारी, अग्रणी तथा अदम्य व्यापक ज्योति वाले हैं।

15. जिस सूर्य का आश्रय करने वाली किरणें इन्द्र की सम्पूर्ण वृष्टि सम्पत्ति का भक्षण करती हैं और फिर उनको उत्पन्न करने अर्थात् वर्षण करने के समय यथाभाग उत्पन्न करती हैं, उस सूर्य को हम हृदय में धारण करते हैं।

16. हे देवों! आज सूर्य का उदय हमारे पाप और दोष को दूर करे और मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी तथा स्वर्ग मेरी इस वाणी का अनुमोदन करें।

17. सबके प्रेरक सूर्यदेव स्वर्णिम रथ में विराजमान होकर अन्धकारपूर्ण अन्तरिक्ष-पथ में विचरण करते हुए देवों और मनुष्यों को उनके कार्यों में लगाते हुए लोकों को देखते हुए चले आ रहे हैं।

3.7. गणपति-नारद उवाच,

प्रणम्य शिरसा देवं गौरीपुत्रं विनायकम्।

भक्तावासं स्मरेन्नित्यमायुःकामार्थसिद्ध

नारद जी कहते हैं- पहले मस्तक झुकाकर गौरीपुत्र विनायका देव को प्रणाम करके प्रतिदिन आयु, अभीष्ट मनोरथ और धन आदि प्रयोजनों की सिद्धि के लिए भक्त के हृदय में वास करने वाले गणेश जी का स्मरण करें ।

प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम्।

तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्रं चतुर्थकम्॥

लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च।

सप्तमं विघ्नराजेन्द्रं धूम्रवर्णं तथाष्टमम्॥

नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम्।

एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम्॥

जिनका पहला नाम 'वक्रतुण्ड' है, दूसरा 'एकदन्त' है, तीसरा 'कृष्णपिङ्गाक्षं' है, चौथा 'गजवक्र' है, पाँचवाँ 'लम्बोदर', छठा 'विकट', सातवाँ 'विघ्नराजेन्द्रं', आठवाँ 'धूम्रवर्ण', नौवां 'भालचंद्र', दसवाँ 'विनायक', ग्यारहवाँ 'गणपति', और बारहवाँ नाम 'गजानन' है।

द्वादशैतानि नामानि त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।

न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिकरं प्रभो॥

जो मनुष्य सुबह, दोपहर और शाम-तीनों समय प्रतिदिन इन बारह नामों का पाठ करता है, उसे संकट का भय नहीं होता। यह नाम-स्मरण उसके लिए सभी सिद्धियों का उत्तम साधक है।

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्।

पुत्रार्थी लभते पुत्रान् मोक्षार्थी लभते गतिम्॥

इन नामों के जप से विद्यार्थी को विद्या, धन की कामना रखने वालों को धन, पुत्र की कामना रखने वालों को पुत्र और मोक्ष की कामना रखने वालो को मोक्ष में गति प्राप्त हो जाती है।

जपेद्गणपतिस्तोत्रं षड्भिर्मासैः फलं लभेत्।

संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नात्र संशयः॥

इस गणपति स्तोत्र का नित्य जप करें। इसके नित्य पठन से जपकर्ता को छह महीने में अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। एक वर्ष तक जप करने से मनुष्य सिद्धि को प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है।

अष्टभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च लिखित्वा यः समर्पयेत्।

तस्य विद्या भवेत् सर्वा गणेशस्य प्रसादतः॥

जो इस स्तोत्र को भोजपत्र पर लिखकर आठ ब्राह्मणों को दान करता है, गणेश जी की कृपा से उसे सम्पूर्ण विद्या की प्राप्ति होती है।

॥ इति श्री नारदपुराणं संकटनाशनं महागणपति स्तोत्रम् सम्पूर्णम्॥

संकटनाशन स्तोत्र संसार में सर्वप्रथम पूजनीय भगवान श्री गणेश को समर्पित सबसे प्रभावशाली नारद जी द्वारा कथन किया हुआ स्तोत्र है। इसे सबसे पहले श्री नारद जी ने सुनाया है।

3.8. शनि स्तोत्र-

नम: कृष्णाय नीलाय शितिकण् निभाय च। नम: कालाग्निरूपाय कृतान्ताय च वै नम: ॥1।।

नमो निर्मांस देहाय दीर्घश्मश्रुजटाय च। नमो विशालनेत्रय शुष्कोदर भयाकृते॥2॥

नम: पुष्कलगात्रय स्थूलरोम्णेऽथ वै नम:। नमो दीर्घायशुष्काय कालदष्ट्र नमोऽस्तुते॥3॥

नमस्ते कोटराक्षाय दुख्रर्नरीक्ष्याय वै नम: । नमो घोराय रौद्राय भीषणाय कपालिने॥4॥

नमस्ते सर्वभक्षाय वलीमुखायनमोऽस्तुते। सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु भास्करे भयदाय च ॥5॥

अधोदृष्टे: नमस्तेऽस्तु संवर्तक नमोऽस्तुते। नमो मन्दगते तुभ्यं निरिस्त्रणाय नमोऽस्तुते ॥6॥

तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च। नमो नित्यं क्षुधार्ताय अतृप्ताय च वै नम: ॥7॥

ज्ञानचक्षुर्नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मज सूनवे। तुष्टो ददासि वै राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात् ॥8॥

देवासुरमनुष्याश्च सि विद्याधरोरगा:। त्वया विलोकिता: सर्वे नाशंयान्ति समूलत:॥9॥

प्रसाद कुरु मे देव वाराहोऽहमुपागत।एवं स्तुतस्तदा सौरिर्ग्रहराजो महाबल: ॥10॥

3.9. विष्णु स्तोत्र-

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १॥

यस्य द्विरदवक्त्राद्याः पारिषद्याः परः शतम्। विघ्नं निघ्नन्ति सततं विष्वक्सेनं तमाश्रये ॥ २॥

व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्। पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥ ३॥

व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे। नमो वै ब्रह्मनिधये वासिष्ठाय नमो नमः ॥ ४॥

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने। सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥ ५॥

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्। विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥

नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते । अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः। युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ ॥

युधिष्ठिर उवाच —

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् । स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥ २ ॥

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः । किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ३ ॥

भीष्म उवाच

भीष्म उवाच —

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् । स्तुवन् नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥ १०॥

तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्। ध्यायन् स्तुवन् नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥ ११॥

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्। लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ १२॥

ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम्। लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ १३॥

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः। यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥ १४॥

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः। परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥ १५॥

पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्। दैवतं दैवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥ १६॥

यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे। यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥ १७॥

तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते। विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ॥ १८॥

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः। ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये॥ १९॥

ऋषिर्नाम्नां सहस्रस्य वेदव्यासो महामुनिः॥ छन्दोऽनुष्टुप् तथा देवो भगवान् देवकीसुतः ॥ २०॥

अमृतांशूद्भवो बीजं शक्तिर्देवकिनन्दनः। त्रिसामा हृदयं तस्य शान्त्यर्थे विनियोज्यते ॥ २१॥

विष्णुं जिष्णुं महाविष्णुं प्रभविष्णुं महेश्वरम्॥ अनेकरूप दैत्यान्तं नमामि पुरुषोत्तमं ॥ २२ ॥

पूर्वन्यासः ।

श्रीवेदव्यास उवाच —

ॐ अस्य श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनामस्तोत्रमहामन्त्रस्य।श्री वेदव्यासो भगवान् ऋषिः।अनुष्टुप् छन्दः। श्रीमहाविष्णुः परमात्मा श्रीमन्नारायणो देवता।अमृतांशूद्भवो भानुरिति बीजम् ।देवकीनन्दनः स्रष्टेति शक्तिः।उद्भवः क्षोभणो देव इति परमो मन्त्रः।शङ्खभृन्नन्दकी चक्रीति कीलकम्।शार्ङ्गधन्वा गदाधर इत्यस्त्रम्।रथाङ्गपाणिरक्षोभ्य इति नेत्रम्।त्रिसामा सामगः सामेति कवचम्।आनन्दं परब्रह्मेति योनिः। ऋतुः सुदर्शनः काल इति दिग्बन्धः॥ श्रीविश्वरूप इति ध्यानम् ।श्रीमहाविष्णुप्रीत्यर्थे सहस्रनामस्तोत्रपाठे विनियोगः ॥

अथ न्यासः।

ॐ शिरसि वेदव्यासऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः । हृदि श्रीकृष्णपरमात्मदेवतायै नमः।गुह्ये अमृतांशूद्भवो भानुरिति बीजाय नमः। पादयोर्देवकीनन्दनः स्रष्टेति शक्तये नमः। सर्वाङ्गे शङ्खभृन्नन्दकी चक्रीति कीलकाय नमः। करसम्पूटे मम श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः॥ इति ऋषयादिन्यासः ॥

अथ करन्यासः।

ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कार इत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः। अमृतांशूद्भवो भानुरिति तर्जनीभ्यां नमः। ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मेति मध्यमाभ्यां नमः। सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्य इत्यनामिकाभ्यां नमः। निमिषोऽनिमिषः स्रग्वीति कनिष्ठिकाभ्यां नमः। रथाङ्गपाणिरक्षोभ्य इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। इति करन्यासः ।

अथ षडङ्गन्यासः। ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कार इति हृदयाय नमः। अमृतांशूद्भवो भानुरिति शिरसे स्वाहा। ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मेति शिखायै वषट्। सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्य इति कवचाय हुम्। निमिषोऽनिमिषः स्रग्वीति नेत्रत्रयाय वौषट्। रथाङ्गपाणिरक्षोभ्य इत्यस्त्राय फट्। इति षडङ्गन्यासः॥ श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे विष्णोर्दिव्यसहस्रनामजपमहं करिष्ये इति सङ्कल्पः।

अथ ध्यानम् ।

क्षीरोदन्वत्प्रदेशे शुचिमणिविलसत्सैकतेमौक्तिकानां
मालाक्लृप्तासनस्थः स्फटिकमणिनिभैर्मौक्तिकैर्मण्डिताङ्गः ।
शुभ्रैरभ्रैरदभ्रैरुपरिविरचितैर्मुक्तपीयूष वर्षैः
आनन्दी नः पुनीयादरिनलिनगदा शङ्खपाणिर्मुकुन्दः ॥ १॥
भूः पादौ यस्य नाभिर्वियदसुरनिलश्चन्द्र सूर्यौ च नेत्रे
कर्णावाशाः शिरो द्यौर्मुखमपि दहनो यस्य वास्तेयमब्धिः ।
अन्तःस्थं यस्य विश्वं सुरनरखगगोभोगिगन्धर्वदैत्यैः
चित्रं रंरम्यते तं त्रिभुवन वपुषं विष्णुमीशं नमामि ॥ २॥
ॐ शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं योगिहृद्ध्यानगम्यं वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥
३॥
मेघश्यामं पीतकौशेयवासं श्रीवत्साङ्कं कौस्तुभोद्भासिताङ्गम् ।
पुण्योपेतं पुण्डरीकायताक्षं विष्णुं वन्दे सर्वलोकैकनाथम् ॥ ४॥
नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते। अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ ५॥
सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं स्थलशोभिकौस्तुभं
नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥ ६॥
छायायां पारिजातस्य हेमसिंहासनोपरि आसीनमम्बुदश्याममायताक्षमलंकृतम् ।
चन्द्राननं चतुर्बाहुं श्रीवत्साङ्कित वक्षसं रुक्मिणी सत्यभामाभ्यां सहितं कृष्णमाश्रये ॥ ७॥ स्तोत्रम् ।
हरिः ॐ ।

विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः। भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १॥
पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः। अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ २॥
योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वर। नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः ॥ ३॥
सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः। सम्भवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥ ४॥
स्वयम्भूः शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः। अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥ ५॥
अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः। विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥ ६॥
अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः। प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम् ॥ ७॥
ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः। हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥ ८॥

ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः। अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥ ९॥
सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः। अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥ १०॥
अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः। वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः ॥ ११॥
वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्माऽसम्मितः समः। अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥ १२॥
रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः। अमृतः शाश्वतस्थाणुर्वरारोहो महातपाः ॥ १३॥
सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः। वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित् कविः ॥ १४॥
लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः। चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥ १५॥
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः। अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥ १६॥
उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः। अतीन्द्रः सङ्ग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः ॥ १७॥
वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः। अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥ १८॥
महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः। अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥ १९॥
महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां गतिः। अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पतिः ॥ २०॥
मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः। हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥ २१॥
अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः सन्धाता सन्धिमान् स्थिरः।अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥ २२॥
गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः। निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ २३॥
अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान् न्यायो नेता समीरणः। सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ २४॥
आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः सम्प्रमर्दनः। अहः संवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥ २५॥
सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः। सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ॥ २६॥
असङ्ख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः। सिद्धार्थः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥ २७॥
वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः। वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥ २८॥
सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः। नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥ २९॥
ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः। ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥ ३०॥
अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिन्दुः सुरेश्वरः। औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ३१॥
भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः। कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः ॥ ३२॥
युगादिकृद्युगावर्तो नैकमायो महाशनः। अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित् ॥ ३३॥
इष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः। क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥ ३४॥
अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः। अपांनिधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥ ३५॥
स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः। वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरन्दरः ॥ ३६॥

अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः। अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ३७॥
पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत्। महर्द्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥ ३८॥
अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः। सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान् समितिञ्जयः ॥ ३९॥
विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः। महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥ ४०॥
उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः। करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥ ४१॥
व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः। परर्द्धिः परमस्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥ ४२॥
रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः। वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥ ४३॥
वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः। हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः ॥ ४४॥
ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः। उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ॥ ४५॥
विस्तारः स्थावरस्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम्। अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥ ४६॥
अनिर्विण्णः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः। नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥ ४७॥
यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः। सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥ ४८॥
सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत्। मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥ ४९॥
स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत्। वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥ ५०॥
धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम्। अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥ ५१॥
गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः। आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥ ५२॥
उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः। शरीरभूतभृद्भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥ ५३॥
सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित्पुरुसत्तमः। विनियोज्यः सत्यसन्धो दाशार्हः सात्वताम्पतिः ॥ ५४॥
जीवो विनयिता साक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः। अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः ॥ ५५॥
अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः। आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः ॥ ५६॥
महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः। त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत् ॥ ५७॥
महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी। गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥ ५८॥
वेधाः स्वाङ्गोऽजितः कृष्णो दृढः सङ्कर्षणोऽच्युतः। वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ॥ ५९॥
भगवान् भगहाऽऽनन्दी वनमाली हलायुधः। आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ॥ ६०॥
सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः। दिवस्पृक् सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ॥ ६१॥
त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक्। संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम् ॥ ६२॥
शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः। गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ॥ ६३॥
अनिवर्ती निवृत्तात्मा सङ्क्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः। श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतांवरः ॥ ६४॥

श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः। श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः ॥ ६५॥

स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः। विजितात्माऽविधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥ ६६॥

उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतस्थिरः। भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः ॥ ६७॥

अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः। अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥ ६८॥

कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः। त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ॥ ६९॥

कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः। अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनञ्जयः ॥ ७०॥

ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद् ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः। ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥ ७१॥

महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः। महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥ ७२॥

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः। पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ ७३॥

मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः। वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥ ७४॥

सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः। शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥ ७५॥

भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः। दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥ ७६॥

विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान्। अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥ ७७॥

एको नैकः सवः कः किं यत् तत्पदमनुत्तमम्। लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥ ७८॥

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी। वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ॥ ७९॥

अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक्। सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥ ८०॥

तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः। प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ॥ ८१॥

चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः। चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥ ८२॥

समावर्तोऽनिवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः। दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥ ८३॥

शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः। इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥ ८४॥

उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः। अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी ॥ ८५॥

सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः। महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥ ८६॥

कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः। अमृताशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥ ८७॥

सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः। न्यग्रोधोऽदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥ ८८॥

सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः। अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद्भयनाशनः ॥ ८९॥

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान्। अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः ॥ ९०॥

भारभृत् कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः। आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥ ९१॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः। अपराजितः सर्वसहो नियन्ताऽनियमोऽयमः ॥ ९२॥

सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः। अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत् प्रीतिवर्धनः ॥ ९३॥
विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग्विभुः। रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥ ९४॥
अनन्तो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः। अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥ ९५॥
सनात्सनातनतमः कपिलः कपिरव्ययः। स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्स्वस्ति स्वस्तिभुक्स्वस्तिदक्षिणः ॥ ९६॥
अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः। शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः ॥ ९७॥
अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणांवरः। विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ ९८॥
उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः। वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥ ९९॥
अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः। चतुरश्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ॥ १००॥
अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः। जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ १०१॥
आधारनिलयोऽधाता पुष्पहासः प्रजागरः। ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥ १०२॥
प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणभृत्प्राणजीवनः। तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ॥ १०३॥
भूर्भुवःस्वस्तरुस्तारः सविता प्रपितामहः। यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥ १०४॥
यज्ञभृद् यज्ञकृद् यज्ञी यज्ञभुग् यज्ञसाधनः। यज्ञान्तकृद् यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ॥ १०५॥
आत्मयोनिः स्वयञ्जातो वैखानः सामगायनः। देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः ॥ १०६॥
शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः। रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः ॥ १०७॥

सर्वप्रहरणायुध ॐ नम इति ।

वनमाली गदी शार्ङ्गी शङ्खी चक्री च नन्दकी ।

श्रीमान् नारायणो विष्णुर्वासुदेवोऽभिरक्षतु ॥ १०८॥

श्री वासुदेवोऽभिरक्षतु ॐ नम इति ।

उत्तरन्यासः ।

भीष्म उवाच —

इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः। नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥ १॥
य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत्। नाशुभं प्राप्नुयात्किञ्चित्सोऽमुत्रेह च मानवः ॥ २॥
वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत्। वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ ३॥
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात्। कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजाम् ॥ ४॥
भक्तिमान् यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः। सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्तयेत् ॥ ५॥
यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च। अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ६॥
न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति। भवत्यरोगो द्युतिमान्बलरूपगुणान्वितः ॥ ७॥

रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्। भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥ ८॥

दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम्। स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥ ९॥

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः। सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ १०॥

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्। जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥ ११॥

इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः। युज्येतात्मसुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥ १२॥

न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः। भवन्ति कृत पुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥ १३॥

द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः। वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥ १४॥

ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम्। जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥ १५॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः। वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥ १६॥

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्प्यते। आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥ १७॥

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः। जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥ १८॥

योगो ज्ञानं तथा साङ्ख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च। वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनात् ॥ १९॥

एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः। त्रींल्लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः ॥ २०॥

इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम्। पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥ २१॥

विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम्। भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम् ॥ २२॥

न ते यान्ति पराभवम् ॐ नम इति ।

अर्जुन उवाच —

पद्मपत्रविशालाक्ष पद्मनाभ सुरोत्तम। भक्तानामनुरक्तानां त्राता भव जनार्दन ॥ २३॥

श्रीभगवानुवाच —

यो मां नामसहस्रेण स्तोतुमिच्छति पाण्डव। सोऽहमेकेन श्लोकेन स्तुत एव न संशयः ॥ २४॥

स्तुत एव न संशय ॐ नम इति ।

व्यास उवाच —

वासनाद्वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम् ।

सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥ २५॥

श्री वासुदेव नमोऽस्तुत ॐ नम इति ।

पार्वत्युवाच —

केनोपायेन लघुना विष्णोर्नामसहस्रकम् ।

पठ्यते पण्डितैर्नित्यं श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ २६॥

ईश्वर उवाच —

श्रीराम राम रामेति रमे रामे मनोरमे।

सहस्रनाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने॥ २७॥

श्रीरामनाम वरानन ॐ नम इति ।

ब्रह्मोवाच —

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये

सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।

सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते

सहस्रकोटियुगधारिणे नमः ॥ २८॥

सहस्रकोटियुगधारिणे ॐ नम इति ।

ॐ तत्सदिति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामानुशासनिके पर्वणि भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनामस्तोत्रम् ॥ हरिः ॐ तत्सत्

सञ्जय उवाच —

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ २९॥

श्रीभगवानुवाच —

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ ३०॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ ३१

आर्ताः विषण्णाः शिथिलाश्च भीताः घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः ।

सङ्कीर्त्य नारायणशब्दमात्रं विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति ॥ ३२॥ भवन्तु

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।

करोमि यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि ॥ ३३॥

इति श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

3.10. श्रीशिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।

नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ।। 1 ।।

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।

मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय।। 2 ।।

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्दसूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।

श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय ।। 3 ।।

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्यमुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।

चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय।। 4 ।।

यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय।

दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ।। 5 ।।

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ । शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।। 6 ।।

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

जिनके कण्ठ में सर्पों का हार है, जिनके तीन नेत्र हैं, भस्म ही जिनका अङ्गराग है; दिशाएँ ही जिनके वस्त्र हैं, उन शुद्ध अविनाशी महेश्वर 'न' कारस्वरूप शिव को नमस्कार है ।। 1 ।। गङ्गाजल और चन्दन से जिनकी अर्चा हुई है, मन्दार पुष्प तथा अन्यान्य कुसुमों से जिनकी सुन्दर पूजा हुई है, उन नन्दी के अधिपति प्रमथगणों के स्वामी महेश्वर 'म' कारस्वरूप शिव को नमस्कार है ।। 2 ।। जो कल्याणस्वरूप हैं, पार्वतीजी के मुखकमल को प्रसन्न करने के लिए जो सूर्यस्वरूप हैं, जो दक्ष के यज्ञ का नाश करनेवाले हैं, जिनकी ध्वजा में बैल का चिन्ह है, उन शोभाशाली नीलकण्ठ 'शि' कारस्वरूप शिव को नमस्कार है।। 3 ।। वसिष्ठ, अगस्त्य और गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियों ने तथा इन्द्र आदि देवताओं ने जिनके मस्तक की पूजा की है, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं, उन 'व' कारस्वरूप शिव को नमस्कार है ।। 4 ।। जिन्होंने यक्षरूप धारण किया है, जो जटाधारी हैं, जिनके हाथ में पिनाक है, जो दिव्य सनातन पुरुष हैं, उन दिगम्बर देव 'य' कारस्वरूप शिव को नमस्कार है ।। 5 ।। जो शिव के समीप इस पवित्र पञ्चाक्षर स्तोत्र का पाठ करता है, वह शिवलोक को प्राप्त करता और वहाँ शिवजी के साथ आनन्दित होता है।। 6 ।।

इकाईः 4 विविध व्रतों का परिचय

व्रतों से अरुचि, अजीर्ण, उदरशूल, सिरदर्द और ज्वर-जैसे स्वतः सम्भूत साधारण रोगों से लेकर उपदंश, जलोदर, क्षतक्षय और राजयक्ष्मा-जैसी असाध्य या प्राणान्तक महाव्याधियाँ और कायिक, वाचिक, मानसिक और संसर्गजनित और महापापादि में भी आरोग्यता प्राप्त होती है। आयुर्वेद में भी व्रत और उपवासों के महत्त्व उल्लेख प्राप्त होते हैं।

समस्त भारतीय नर-नारी सूर्य-सोम-भौमादि के एकभुक्तसाध्य व्रत से लेकर एकाधिक कई दिनों तक के अन्नपानादि रहित निराहार व्रतों को बड़ी श्रद्धा से करते हैं क्योंकि इनके प्रभाव से मनुष्यों की आत्मा शुद्ध होकर संकल्पशक्ति को बल प्रदान करती है।

व्रत और उपवास- (1) प्रथम- 'कायिक' शस्त्राघात, मर्माघात और कार्यहानि आदि हिंसा के त्याग से, द्वितीय सत्य भाषण और सद्भाव से 'वाचिक' एवं तृतीय 'मानसिक' मन को शान्त रखने से पूर्ण होता है।

पुण्यसंचय हेतु एकादशी आदि 'नित्य' व्रत, पापक्षय के चान्द्रायणादि 'नैमित्तिक' व्रत एवं सुख-सौभाग्यादि के वटसावित्री आदि 'काम्य' व्रत कहलाते हैं, इनमें द्रव्यविशेष के भोजन और पूजनादि की साधना के द्वारा साध्य व्रत 'प्रवृत्तिरूप' होते हैं और केवल उपवासादि करने के द्वारा साध्य व्रत 'निवृत्तिरूप' हैं।

एकभुक्त व्रत - स्वतन्त्र, अन्यांग और प्रतिनिधि तीन प्रकार होते हैं। दिनार्ध व्यतीत होने पर 'स्वतन्त्र' व्रत, मध्याह्न में 'अन्यांग' एवं 'प्रतिनिधि' आगे-पीछे भी हो सकता है।

कार्तिक आदि मास' व्रत, एकादशी आदि 'तिथि' व्रत, सूर्य, सोमादि के 'वार' व्रत, नक्षत्र व्रत , व्यतिपातादि 'योग' व्रत। भद्रा आदि के 'करण' व्रत और गणेश, विष्णु आदि के 'देव' व्रत स्वतन्त्र व्रत हैं।

बुधाष्टमी-सोम, मंगल, शनि, त्रयोदशी एवं भानुसप्तमी आदि 'तिथि-वार' के, चैत्र शुक्ल नवमी भौम, पुष्य मेषार्क और मध्याह्न की 'रामनवमी' तथा भाद्रपद कृष्णपक्ष अष्टमी बुधवार रोहिणी सिंहार्क और अर्धरात्रि की 'कृष्णजन्माष्टमी' आदि सामूहिक व्रत हैं।

सूर्य उदय अथवा अस्त होनेवाली तिथि स्नान-दान-जपादि सम्पूर्ण कर्मों में महत्त्वपूर्ण हैं। अर्थात् पूर्वाह्ण देवों का, मध्याह्ण मनुष्यों का, अपराह्ण पितरों का और सायाह्ण राक्षसों का काल है। जिस का जो समय निर्णीत है उसका पूजनादि कर्म उसी समय में करना महत्त्वपूर्ण होता है। सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक एक सावन दिन होता है। उसके दिन और रात्रि दो भाग हैं। पहले भाग (दिन) में प्रातः संध्या और मध्याह्ण संध्या तथा दूसरे भाग (रात्रि) में सायाह्ण और निशीथ हैं। इनके अतिरिक्त पूर्वाह्ण', मध्याह्ण, अपराह्ण और सायाह्ण रूप में चार भाग माने हैं। व्यासजी ने दिनभर के पाँच भाग निश्चित किए हैं। सूर्योदय से तीन-तीन मुहूर्त के प्रातः काल, संगव, मध्याह्ण, अपराह्ण और सायाह्ण - ये पाँच भाग हैं। त्रिंशद्घटी प्रमाण के दिनमान का पंद्रहवाँ हिस्सा एक मुहूर्त होता है। यदि दिनमान 34 घड़ी का हों, तो सवा दो और 26 के हों, तो पौने दो घड़ी का एक मुहूर्त होता है। निर्णय में मुहूर्त और उपर्युक्त दिन विभाग आवश्यक होते हैं। प्रदोषकाल सूर्यास्त के बाद दो घड़ी तक माना गया है और उषाकाल सूर्योदय से पहले रहता है।

तिथ्यादि का निर्णय- सूर्योदय होनेवाली तिथि व्रत में ग्रहण करनी चाहिए।

मास अंग्रेजी मास	शुक्लपक्ष एकादशी	कृष्णपक्ष एकादशी
चैत्र(मार्च-अप्रैल)	कामदा	पापमोचिनी
वैशाख (अप्रैल-मई)	मोहिनी	वरुथिनी
ज्येष्ठ (मई-जून)	निर्जला	अपरा
आषाढ़ (जून-जुलाई)	देवशयनी	योगिनी
श्रावण (जुलाई-अगस्त)	पवित्रा	कामदा
भाद्रपद (अगस्त-सितम्बर)	पद्मा(जलझूलनी)	अजा
आश्विन (सितम्बर-अक्टूबर)	पापांकुशा	इन्दिरा
कार्तिक (अक्टूबर-नवम्बर)	देवप्रबोधिनी	रमा
मार्गशीर्ष (नवम्बर-दिसम्बर)	मोक्षदा	उत्पत्ति

पौष (दिसम्बर-जनवरी)	पुत्रदा	सफला
माघ (जनवरी-फरवरी)	जया	षट्तिला
फाल्गुन (फरवरी-मार्च)	आमलकी	विजया

4.1. एकादशीव्रत- एकादशी व्रत के विषय में वर्णन पद्मपुराण में प्राप्त होता है। इसमें वर्णन है कि पांडु पुत्र भीम ने अपनी मुक्ति हेतु महर्षि वेद व्यासजी से आग्रह किया कि मुझे ऐसा कोई एक व्रत का निर्देश दीजिए जिससे कि मेरी मुक्ति हो जाए। जब महर्षि वेद व्यासजी ने उनको एकादशी व्रत का निर्देश दिया कि ज्येष्ठ मास की निर्जला एकादशी का व्रत करने से आपका कल्याण होगा।

हरिवल्लभा एकादशी - पुरुषोत्तम मास शुक्ल पक्ष की एकादशी को हरिवल्लभ एकादशी कहते हैं।

कथाप्रयोग- प्राचीन समय में बभ्रुवाहन नामक एक दानी एवं प्रतापी राजा था। वह प्रतिदिन ब्राह्मणों को सौ गायें दान करता था,उसके राज्य में प्रभावती नाम की एक बाल विधवा ब्राह्मणी रहती थी। वह भगवान विष्णु और भगवान शंकर की परम भक्त थी। वह अधिक मास में नित्य स्नान कर विष्णु और शंकर की पूजा करती और हरिवल्लभ एकादशी का भी व्रत करती थी। बभ्रुवाहन और प्रभावती की मृत्यु देवयोग एक ही दिन होने के कारण दोनों एक साथ धर्मराज के दरबार में पहुँचें तो धर्मराज ने उठकर प्रभावती का स्वागत किया लेकिन राजा का स्वागत नहीं किया। राजा को अपने दान-पुण्य कर्मों पर पूर्ण विश्वास था लेकिन स्वागत सत्कार न करने पर राजा आश्चर्यचकित हुए उतने में लेखाधिकारी चित्रगुप्त का दरबार में आगमन हुआ और राजा को चित्रगुप्त ने प्रभावती तथा राजा को कर्मों से जन्मार्जित पुण्य के परिणाम के कारण विष्णु लोक और स्वर्गलोक भेजने का निर्णय सुनाया। राजा को उस निर्णय को सुनकर और भी आश्चर्य में पड़ गए।

पुत्रदा एकादशी

यह व्रत शुक्ल पक्ष पौष मास की एकादशी किया जाता है। इस व्रत को करने से सन्तान की मनोकामना पूर्ण होती है। पुत्रदा एकादशी में जगत के पालनहार भगवान विष्णु की पूजा एवं जागरण किया जाता है।

कथा प्रयोग- एक समय जब भद्रावती में राजा सुकेतु का राज्य करते थे। वे न्यायप्रिय थे लेकिन उनकी पत्नी शैव्या के संतान न होने के कारण, वे बड़े दुःखी रहते थे। एक दिन राजा-रानी ने अपने निर्णयानुसार मंत्री को राजपाट सौंपकर वन के लिए प्रस्थान कर गए। वन में चलते- चलते उनके मन में आत्महत्या करने का विचार आने लगें। परन्तु दोनों ने निर्णय किया कि आत्महत्या करना तो पाप है क्यों न हम सदाचारी बने उसे समय उन्हें वेदपाठ के स्वर सुनाई दिए तो वे उसी ओर चल दिए। ऋषियों ने उन्हें "पुत्रदा एकादशी" का व्रत करने की सलाह दी। राजा रानी ने उनकी बात मानकर एकादशी व्रत किया। इससे उन्हें पुत्र प्राप्त हुआ।

सफला एकादशी- कृष्ण पक्ष पौष मास की एकादशी का बड़ा माहात्म्य है, इसे सफला एकादशी कहते हैं, इसका व्रत और जागरण करने से भगवान अच्युत सम्पूर्ण मनोकामना पूर्ण कर देते हैं। सामग्री- अगरबत्ती, नारियल, सुपारी, आँवला, अनार , लौंग दीप।

कथाप्रयोग- राजा महिष्यत के चार बेटे थे। उनका छोटा बेटा ल्युक धूर्त और पापी था। वह पिता के धन को अनर्थक कर्मों में नष्ट करता रहता था। इससे दुखित राजा ने उसे देश निकाला दे दिया। परन्तु उसके बाद वह लूटपाट करने लगा। एक बार उसे लूटपाट के लिए एक भी अवसर नही मिला तो तीन दिन तक निराहार रहना पड़ा और वह भोजन खोजते- खोजते एक महात्मा की कुटिया पर पहुँचा। उस दिन "सफला एकादशी" थी। महात्मा ने उसका स्वागत सत्कार किया एवं भोजन कराया। महात्मा के व्यवहार को देखकर उसकी बुद्धि परिवर्तित हो गई और उसके बाद उसने दुष्कर्मों को त्याग दिया तथा सद्मार्ग पर चलने लगा उससे उसे मोक्ष की प्राप्ति हुई।

मोक्षदा एकादशी - शुक्ल पक्ष मार्गशीर्ष मास की एकादशी को मोक्षदा एकादशी कहते हैं। इसी दिन भगवान् श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध के प्रारम्भ होने के पूर्व मोहित हुए अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश किया था। पद्मपुराण में भगवान श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर से कहते हैं-इस दिन तुलसी की मंजरी, धूप-दीप आदि से भगवान दामोदर का पूजन करना चाहिए। मोक्षदा एकादशी बडे-बडे पातकों का नाश करने वाली है।

अतः इस दिन श्री कृष्ण का स्मरण एवं श्रीमद्भगवद् गीता का परायण करना चाहिए। श्रीकृष्ण ने गीता में कर्मयोग पर विशेष बल दिया है तथा आत्मा को अजर-अमर अविनाशी बताया है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपड़ों को उतारकर नए कपड़े धारण कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा भी जर्जर शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण कर लेती हैं।

पूर्वकाल में वैखानस नामक राजा ने पर्वत मुनि के द्वारा बताए जाने पर अपने पितरों की मुक्ति के उद्देश्य से इस एकादशी का विधिविधान से व्रत किया था। इस व्रत के पुण्य के प्रभाव से राजा वैखानस के पितरों का नरक से उद्धार हो गया। जो इस एकादशी का व्रत करता है, उसके सारे पाप नष्ट होकर भवबंधन से मुक्ति प्रदान करती है। मोक्षदा एकादशी की पौराणिक कथा पढ़ने-सुनने से वाजपेययज्ञ का पुण्यफल मिलता है।

उत्पन्ना एकादशी - उत्पन्ना एकादशी का व्रत मार्गशीर्ष मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को रखा जाता है। इस दिन भगवान् श्री कृष्ण की पूजा का विधान है। दशमी के दिन शाम को भोजन नहीं करना चाहिए। एकादशी को ब्रह्मवेला में भगवान कृष्ण की पुष्प, जल, धूप, अक्षत से पूजा की जाती है। इस व्रत में केवल फलों का ही भोग लगाया जाता है। यह ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिदेवों का संयुक्त अंश माना जाता है। यह अंश दत्तात्रेय के रूप में प्रकट हुआ था। यह मोक्ष देनेवाला व्रत माना जाता है।

कथाः सत्ययुग में एक बार मुर नामक दानव ने देवताओं पर विजय प्राप्त कर इन्द्र को अपदस्थ कर दिया तो देवता भगवान शंकर की शरण में पहुँच कर रक्षा की प्रार्थना करने लगें। भगवान शंकर ने कहा कि आप देवताओं को विष्णु जी के पास जाना होगा। देवताओं ने विष्णुजी के पास पहुँचकर उनसे सब वृतान्त सुनाया तो विष्णुजी ने देवताओं के निवेदन पर दानवों को तो परास्त कर दिया लेकिन मुर नामक राक्षस भाग गया। विष्णु ने मुर को भागता देखकर लड़ाई समाप्त कर बद्रिकाश्रम में सिंहावती गुफा में आराम करने लगे। मुर ने वहाँ पहुँचकर विष्णुजी पर आक्रमण चाहा। तत्काल विष्णुजी के शरीर से दिव्य अस्त्र-शस्त्रों से युक्त एक कन्या का जन्म हुआ, जिसने मुर का वध कर दिया। उस कन्या ने विष्णु को बताया मैं आपके अंश से उत्पन्न शक्ति हूँ। विष्णुजी ने प्रसन्न होकर उस कन्या को आशीर्वाद दिया कि तुम संसार में माया जाल में उलझे तथा मोह के कारण मुझसे विमुख प्राणियों को मुझ तक लाने में

सक्षम होगी। तुम्हारी आराधना करनेवाले प्राणी आजीवन सुखी रहेंगे। यही कन्या "एकादशी" कहलाई। वर्ष की 24 एकादशियों में यही एकादशी ऐसी है जिसका माहात्म्य अपूर्व है।

देवोत्थान एकादशी- तुलसी विवाह एवं भीष्म पंचक कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी देवोत्थान, तुलसी विवाह एवं भीष्म पंचक एकादशी के रूप में मनाई जाती है।

देवोत्थान एकादशी (पद्मपुराण उत्तरखण्ड)

भगवान विष्णु आषाढ़ शुक्ल एकादशी को चार मास के लिए क्षीर सागर में शयन करते हैं। चार मास उपरान्त कार्तिक शुक्ल एकादशी को जागते हैं। विष्णु के शयनकाल के चार मासों में विवाहादि मांगलिक कार्य वर्जित रहते हैं। विष्णुजी के जागने के बाद ही सभी मांगलिक कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं। इस एकादशी का व्रत करने से एक हजार अश्वमेध यज्ञ और सौ राजसूय यज्ञों का फल प्राप्त होता है।

कार्तिक मास में जो मनुष्य तुलसी का विवाह भगवान से करते हैं उनके पिछले जन्मों के सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

तुलसी विवाह

कार्तिक मास में स्नान करने वाली स्त्रियाँ कार्तिक शुक्ल एकादशी को शालिग्राम और तुलसी का विवाह करती हैं। समस्त विधि विधान पूर्वक गाजे बाजे के साथ एक सुन्दर मण्डप के नीचे यह कार्य सम्पन्न होता है।

रम्भा एकादशी -यह व्रत कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को रखा जाता है। इस दिन भगवान कृष्ण का सम्पूर्ण वस्तुओं से पूजन, नैवेद्य तथा आरती कर प्रसाद वितरित करके ब्राह्मणों को भोजन करायें तथा दक्षिणा दें।

कथा प्रयोग विधि- पुराने समय में मुचकुन्द नाम का दानी, धर्मात्मा राजा था। वह प्रत्येक एकादशी का व्रत करता था। राज्य की प्रजा भी प्रत्येक एकादशी का व्रत रखने लगी थी। राजा की चन्द्रभागा पुत्री भी एकादशी का व्रत करती थी।

उसका विवाह राजा चन्द्रसेन के पुत्र शोभन के साथ हुआ। शोभन राजा के साथ ही रहता था। अतः वह भी एकादशी का व्रत करने लगा। कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को शोभन ने एकादशी का

व्रत रखा लेकिन भूख से व्याकुल होकर मृत्यु को प्राप्त हो गया। इससे राजा, रानी और पुत्री बहुत दुःखी हुए परन्तु एकादशी का व्रत करते रहे।

शोभन को व्रत के प्रभाव से मन्दराचल पर्वत पर स्थित देव नगर में आवास मिला। वहाँ उसकी सेवा में रम्भादि अप्सराएँ तत्पर थीं। अचानक एक दिन मुचुकुन्द मन्दराचल पर्वत पर गये तो वहाँ पर उन्होंने शोभन को देखा। घर आकर उन्होंने सब वृतान्त रानी एवं पुत्री को बताया। पुत्री यह समाचार पाकर पति के पास चली गई तथा दोनों सुखपूर्वक जीवन जीने लगे।

हरिवल्लभा एकादशी-पुरुषोत्तम मास में शुक्ल पक्ष की एकादशी को हरिवल्लभ (परमा) एकादशी कहते हैं।

कथा प्रयोग विधि- प्राचीन काल में बभ्रुवाहन नामक एक दानी तथा प्रतापी राजा था। वह प्रतिदिन ब्राह्मणों को सौ गायें दान करता था। उसी के राज्य में प्रभावती नाम की एक बाल विधवा ब्राह्मणी रहती थी। वह भगवान विष्णु और भगवान शंकर की परम उपासक थी। वह अधिक मास में नित्य स्नान कर विष्णु तथा शंकर की पूजा करती थी। इसी बीच वह हरिवल्लभ एकादशी का व्रत भी करती थी। देवयोग से बभ्रुवाहन और प्रभावती की मृत्यु एक ही दिन हुई थी। दोनों एक साथ धर्मराज के दरबार में पहुँचें। धर्मराज ने उठकर प्रभावती का स्वागत किया परन्तु राजा का स्वागत नहीं किया गया। राजा को अपने द्वारा किये गये दान-पुण्य पर पूरा भरोसा था। परन्तु अपना स्वागत न किया जाना राजा को बड़ा आश्चर्य लगा। इसी समय व्यक्ति के कार्यों का लेखा-जोखा रखने वाले चित्रगुप्त ने आकर प्रभावती तथा राजा को कर्मानुसार विष्णु लोक और स्वर्गलोक जाने की बात बताई। राजा को यह सुनकर और भी आश्चर्य हुआ। राजा ने धर्मराज से इसका कारण पूछा तो धर्मराज ने बताया कि प्रभावती द्वारा हरिवल्लभा एकादशी व्रत किया था उसके प्रभाव से ऐसा हुआ है।

पद्ममिनी एकादशी-

मलमास की कृष्णपक्ष की एकादशी को पद्ममिनी एकादशी कहते है। इसमें राधा- कृष्ण और शिव-पार्वती जी की पूजा की जाती है।

कथा प्रयोग विधि- लंकापति रावण दिग्विजय के लिए गया जब कार्त्तवीर्य अर्जुन ने पराजित कर बन्दी बना लिया। देवर्षि नारद इस पराजय पर अति प्रसन्न हुए। अगस्त्य मुनि के आदेश पर अर्जुन ने रावण

को छोड़ दिया। देवर्षि नारद अगस्त्य मुनि से इसका कारण बताने के लिए आग्रह किया तो उन्होंने बताया कि अर्जुन को हराने की सामर्थ्य भगवान् विष्णु के अतिरिक्त किसी में नहीं है क्योंकि अर्जुन की माता पद्ममिनी और पिता कार्त्तवीर्य ने पुत्र कामना से गंधमादन पर्वत पर अनेक वर्षों तक कठोर तपस्या की थी और अनुसूइया के कहने पर उन्होंने पद्ममिनी एकादशी का व्रत किया था। इसके प्रभाव से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने स्वयं दर्शन देकर उन्हें अर्जुन जैसा शक्तिशाली और सदैव अजेय रहनेवाला पुत्र प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया।

पापाकुंशा एकादशी -आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी को पापाकुंशा एकादशी कहते हैं। यह एकादशी पापरूपी हाथी को महावत रूपी अंकुश से बेधने के कारण पापाकुंशा एकादशी कहलाती है। इस दिन भगवान विष्णु की पूजा की जाती है तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा देकर विदा करना चाहिए। इस एकादशी का व्रत करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है।

कथा प्रयोग विधि- विन्ध्याचल पर्वत पर एक महाक्रूर बहेलिया रहता था जिसका कर्म के अनुसार नाम भी क्रोधन था। उसने अपना समस्त जीवन हिंसा, लूटपाट, मिथ्या भाषण तथा मदिरा पीने में ही व्यतीत कर कर रहा था। यमराज ने उसके अन्तिम समय से एक दिन पूर्व अपने दूतों को उसे लाने हेतु भेजा। दूतों ने क्रोधन को बताया कि कल तुम्हारा अन्तिम समय है, हम तुम्हें लेने आये हैं। मृत्यु के डर से क्रोधन अंगिरा ऋषि के आश्रम में पहुँचा। उसने ऋषि से अपनी रक्षा हेतु अनुरोध किया। ऋषि ने उससे आश्विन शुक्ल की एकादशी का व्रत तथा भगवान विष्णु के पूजन का विधिविधान बताया। संयोग से उस दिन एकादशी ही थी।

इन्दिरा एकादशी - आश्विन मास की कथा पक्ष की एकादशी को इन्दिरा एकादशी कहते है। भटकते हुए पितरों की गति सुधारने वाली एकादशी को इन्दिरा एकादशी कहते हैं।

इस दिन शालिग्राम जी की पूजा की जाती है। इस दिन शालिग्राम जी पर कुल्सी दल अवश्य चढ़ाना चाहिए। पुराणों में कहा गया है कि सतयुगण में इन्द्रसेन नामक एक राजा था। एक दिन नारदजी उसके यहाँ पधारे और कहने लगे हे राजन! के यमलोक से आ रहा हूँ। वहाँ पर तुम्हारे पिता बड़े दुःखी हैं।

तुम उनकी सद्गति के लिए आश्विन मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी का व्रत करो। इस व्रत के प्रभाव से तुम्हारे पिताजी को सद्गति प्राप्त होगी।

इन्द्रसेन ने नारदजी के कहने पर आश्विन कृष्ण एकादशी को व्रत किया। इससे उसके पिता यमलोक की यंत्रणा से मुक्त होकर स्वर्गलोक को चले गये। राजा ने देखा कि उसके बाद राज्य की प्रजा भी यह व्रत रखने लगी।

पद्मा एकादशी -आषाढ़ माह में शेष शैया पर निद्रा-मग्न भगवान विष्णु भादों की शुक्ल पक्ष की एकादशी को करवट बदलते हैं। इस एकादशी को "पद्मा एकादशी कहते हैं। इस दिन लक्ष्मी पूजन करना चाहिए।

अजा एकादशी -भाद्रपद कृष्ण पक्ष की एकादशी कामिनी, प्रबोधिनी, जया, तथा अजा नाम से विख्यात है। इस दिन भगवान विष्णु जी की पूजा की जाती है। रात्रि जागरण एवं व्रत रखने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

कथा प्रयोग विधि- एक बार सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में ऋषि विश्वामित्र को अपना राज्य दान कर दिया है। अगले दिन ऋषि विश्वामित्र दरबार में पहुँचे तो राजा ने उन्हें अपना सारा राज्य सौंप दिया। ऋषि ने उनसे दक्षिणा की पाँच सौ स्वर्ण मुद्राएँ और माँगी। दक्षिणा चुकाने के लिए राजा को अपनी पत्नी एवं पुत्र तथा स्वयं को बेचकर दान मुद्राएँ दी। राजा हरिश्चन्द्र को एक डोम ने खरीदा था। डोम ने राजा हरिश्चन्द्र को श्मशान में नियुक्त करके मृतकों के शव दाह करने के लिएसे कर लेने का कार्य दिया था। उनको जब यह कार्य करते हुए कई वर्ष बीत गए तो एक दिन अकस्मात् उनकी गौतम ऋषि से भेंट है हुई। राजा ने उनसे अपने ऊपर बीती सब बातें सुनाई ऋषि ने उन्हें इसी अजा एकादशी का व्रत करने की परामर्श दिया। राजा ने यह व्रत करना आरम्भ कर दिया लेकिन कुछ दिन उपरान्त उनके पुत्र रोहिताश का सर्प के डसने से स्वर्गवास हो गया। जब उसकी माता अपने पुत्र को अन्तिम संस्कार हेतु श्मशान पर ले गई तो राजा हरिश्चन्द्र ने उससे श्मशान का कर माँगा। परन्तु उसके पास श्मशान का कर चुकाने के लिए कुछ भी नहीं था। उसने चुन्दरी का आधा भाग देकर श्मशान का कर चुकाया। तत्काल आकाश में बिजली चमकी और प्रभु प्रकट होकर बोले, "महाराज! तुमने सत्य को जीवन में धारण करके उच्चतम आर्दश प्रस्तुत किया है। तुम्हारी कर्तव्य निष्ठा धन्य है। तुम इतिहास में सत्यवादी

राजा हरिश्चन्द्र के नाम से अमर रहोगे।" भगवत्कृपा से रोहित जीवित हो गया। तीनों प्राणी चिरकाल तक सुख भोगकर अन्त में स्वर्गलोक को चले गए।

पुत्रदा एकादशी - शुक्ल पक्ष श्रावण मास की एकादशी को पुत्रदा एकादशी कहते हैं। इस दिन भगवान विष्णु का विधिविधान से कर व्रत रखना चाहिए। रात्रि में भगवान की मूर्ति के पास ही सोने का विधान है। अगले दिन वेद पाठी ब्राह्मणों को भोजन कराकर दान देकर आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए। इस व्रत को रखने वाले निःसन्तान व्यक्ति को पुत्र रत्न की प्राप्ति अवश्य होती है।

कथा प्रयोग विधि- प्राचीन काल में महिष्मति नगरी में महीजित नामक राजा राज्य करता था। राजा धर्मात्मा, शान्तिप्रिय तथा दानी होने पर भी निःसन्तान था। राजा ने एक बार ऋषियों को बुलाकर संतान प्राप्ति की चर्चा की। परमज्ञानी लोमेश ऋषि ने कहा कि आपने पिछले जन्म में सावन की एकादशी को अपने तालाब से प्यासी गाय को पानी नहीं पीने दिया था। उसी के परिणाम स्वरूप आप अभी तक निःसन्तान हैं। आप श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी का नियमपूर्वक व्रत रखेंगे और रात्रि जागरण करेंगे तो इससे तुम्हें पुत्र अवश्य प्राप्त होगा। ऋषि की विधि के अनुसार राजा- रानी ने एकादशी का व्रत किया तो उन्हें पुत्र रत्न प्राप्त हुआ।

देवशयनी एकादशी - आषाढ़ शुक्ल एकादशी को देवशयनी एकादशी कहते हैं। पुराणों में उल्लेख आया है कि इस दिन से भगवान विष्णु चार मास तक पाताल लोक में निवास करते हैं और कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी को प्रस्थान करते हैं। इसी कारण इसे देवशयनी एकादशी तथा कार्तिक मास वाली एकादशी को देवोत्थानी एकादशी कहते हैं। सूर्य के मिथुन राशि में संक्रमण होने पर चातुर्मास का आरंभ माना जाता है। इस दिन से भगवान श्री हरि विष्णु चार महीनों में भगवान क्षीर सागर की अनन्त शैय्या पर शयन करते हैं और फिर लगभग चार मास के उपरान्त तुला राशि में सूर्य के जाने पर उन्हें देवोत्थानी एकादशी को उठाया जाता है। आषाढ़ मास से कार्तिक मास तक के समय को चातुर्मास्य कहते हैं। इसलिए इन चार महीनों में विवाहादि शुभ कार्य करना वर्जित है। इन दिनों में महात्मा एक ही स्थान पर रहकर तपस्या करते हैं।

कथा प्रयोग- देवऋषि नारदजी ने ब्रह्माजी से इस एकादशी के विषय में जानने की उत्सुकता प्रकट की, तब ब्रह्माजी ने उन्हें बताया कि- सतयुग में मान्धाता नगर में एक चक्रवर्ती राजा राज्य करता था। एक बार उसके राज्य में तीन वर्ष तक का सूखा पड़ गया। राजा के दरबार में प्रजा ने दुहाई मचाई राजा सोचने लगा कि मेरे से तो कोई बुरा काम नहीं हो गया जिससे मेरे राज्य में सूखा पड़ गया। राजा प्रजा का दुःख दूर करने के लिए जंगल में अंगिरा ऋषि के आश्रम में पहुँचे। मुनि ने राजा का आश्रम में आने का कारण पूछा। राजा ने कर-बद्ध होकर प्रार्थना की, "भगवान मैंने सब प्रकार से धर्म का पालन किया है फिर भी मेरे राज्य में सूखा पड़ गया। कृपया इसका समाधान करने की कृपा करें।' यह सुनकर महर्षि अंगिरा ने कहा- 'हे राजन! " आप आषाढ़ मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी का व्रत कीजिए। इस व्रत के प्रभाव से अवश्य वर्षा होगी।

राजा राजधानी लौट आया और एकादशी का विधिपूर्वक व्रत किया। राज्य में व्रत के प्रभाव से मूसलाधार वर्षा हुई और राज्य के नर- नारी खुशियाँ मनाने लगे।

आषाढ़ मास

योगिनी एकादशी -आषाढ़ मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को योगिनी एकादशी कहा जाता है। इस एकादशी के व्रत में भगवान नारायण की मूर्ति को गंगा जल से स्नान करा कर भोग लगाकर पुष्प, दीप से आरती की जाती है।

इस व्रत में गरीब बह्माणों को दान देना चाहिए। इस व्रत के प्रभाव से पीपल का वृक्ष काटने का पाप का विनाश हो जाता है और स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती हैं।

कथा प्रयोग विधि- प्राचीन काल में धन कुबेर के यहाँ एक माली था, जिसका नाम हेम था। वह प्रतिदिन भगवान शंकर की पूजा के लिए मानसरोवर से फूल लाता था। एक दिन वह अपनी स्त्री के साथ कामोन्मुख होकर विहार कर रहा था। इस प्रकार उसे फूल लाने में देरी हो गई। राजा कुबेर ने क्रोध में आकर कहा- 'अरे पापी! तूने मेरे प पूजनीय श्री शिवजी महाराज का अनादर किया है, इसिलए मैं तुझे शाप देता हूँ कि तू स्त्री का वियोग सहेगा और मृत्युलोक में जाकर कोढ़ी होगा।'

कुबेर के शाप से हेम माली का स्वर्ग से पतन हो गया और वह उसी समय पृथ्वी पर गिर गया। भूतल पर आते ही उसके शरीर में श्वेत कोढ़ हो गया। उसकी स्त्री भी उसी समय अंतर्ध्यान हो गई। मृत्युलोक में आकर माली ने महान दु:ख भोगने लगा, भयानक जंगल में जाकर बिना अन्न और जल के भटकता रहा। भटते- भटते एक दिन वह मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम में पहुँच गया और हेम माली वहाँ जाकर उनके पैरों में पड़ वृत्तांत सुनाया। मार्कण्डेय ऋषि ने आषाढ़ मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को योगिनी एकादशी का विधिपूर्वक व्रत करने को कहा।

हेम माली ने अत्यंत प्रसन्न होकर मुनि को साष्टांग प्रणाम किया। मुनि ने उसे स्नेह के साथ उठाया। हेम माली ने मुनि के कथनानुसार विधिपूर्वक योगिनी एकादशी का व्रत किया। इस व्रत के प्रभाव से अपने पूर्व स्वरूप में आकर वह अपनी स्त्री के साथ सुखपूर्वक जीवन जीने लगा।

निर्जला एकादशी -ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी को निर्जला, एकादशी कहते हैं। इस व्रत में जलपान करना वर्जित है, इसलिए इसे निर्जला एकादशी कहते हैं। चौबीस एकादशियों में से ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी सर्वोत्तम मानी जाती है। इसका व्रत करने से सारी एकादशियों के व्रतों का फल मिल जाता है। भगवान विष्णु की आराधना का विशेष महत्त्व है। इस दिन ॐ नमो भगवते वासुदेवायः का जाप करके गोदान, वस्त्र दान, छत्र, फल आदि का दान करना चाहिए।

कथा प्रयोग विधि- एक बार महर्षि व्यास पांडवों के यहाँ पधारे। भीम ने महर्षि व्यास से कहा, भगवान ! युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव, माता कुन्ती और द्रौपदी सभी एकादशी का व्रत करते हैं और मुझसे भी व्रत रखने को कहते हैं। लेकिन मैं भोजन रह नहीं सकता। इसलिए मुझे कोई ऐसा व्रत बताइये जिसे करने से मुझे उन सबका फल भी मुझे मिल जाए।

महर्षि व्यास तो जानते थे कि भीम के उदर में बृक नामक अग्नि है इसलिए अधिक मात्रा में भोजन करने पर भी उसकी भूख शान्त नहीं होती है। महर्षि ने भीम से कहा तुम ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी का व्रत कीजिए इस व्रत में स्नान आचमन में पानी पीने से दोष नहीं होता। इस व्रत से अन्य तेईस एकादशियों के पुण्य का लाभ भी मिलेगा। तुम जीवन पर्यन्त इस व्रत का पालन करो। भीम ने बड़े साहस के साथ निर्जला एकादशी का व्रत किया, जिसके परिणाम स्वरूप प्रातः होते-होते वह संज्ञाहीन हो गया। तब पाण्डवों ने

गंगाजल, तुलसी चरणामृत प्रसाद, देकर उनकी मूर्च्छा दूर की। अतः इसे भीमसेन एकादशी भी कहते हैं।

अचला एकादशी -ज्येष्ठ मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को अचला(अपरा) एकादशी कहते हैं। इस व्रत के करने से ब्रह्महत्या, परनिन्दा, भूत योनि जैसे निकृष्ट कर्मों से छुटकारा मिल जाता है तथा कीर्ति, पुण्य और धन धान्य की वृद्धि होती है।

कथा प्रयोग विधि- प्राचीन काल में महीध्वज नामक धर्मात्मा राजा राज्य करता था। विधि की विडंबना देखिये कि उसी का छोटा भाई वज्रध्वज क्रूर, अधर्मी और अन्यायी था। वह अपने बड़े भाई को अपना शत्रु समझता था। उसने एक दिन अवसर पाकर अपने बड़े भाई महीध्वज की हत्या कर दी और उसके मृत शरीर को जंगल में पीपल के वृक्ष के नीचे गाड़ दिया।

राजा की आत्मा पीपल पर वास करने लगी और आने जाने वालों को सताने लगी। अकस्मात् एक दिन धौम्य ऋषि उधर से निकले। उन्होंने तपोबल से प्रेत के उत्पात का कारण एवं उसके जीवन वृतांत को समझ लिया। ऋषि महोदय ने प्रसन्न होकर प्रेत को पीपल के वृक्ष से उतारकर परलोक विद्या का उपदेश दिया। अंत में ऋषि ने प्रेत योनि से मुक्ति पाने के लिए "अचला" एकादशी व्रत करने को कहा। अचला एकादशी व्रत करने से राजा दिव्य शरीर धारण कर स्वर्गलोक को चला गया।

मोहिनी एकादशी वैशाख शुक्ल एकादशी मोहिनी एकादशी के नाम से प्रसिद्ध है।

कथा प्रयोग विधि- एक राजा के कई पुत्र थे। उनमें से एक राजकुमार बड़ा ही व्याभिचारी, दुर्जन संग, बड़ों का अपमान करने वाला था। राजा ने उससे तंग आकर उसे अपने राज्य से बाहर निकाल दिया। वह वन में जाकर रहने लगा और जानवरों को मारकर भक्षण करने लगा। एक दिन पूर्व जन्म के संस्कार वश वह एक ऋषि के आश्रम में पहुँचा। ऋषि ने उसे सत्संगति का महत्त्व समझाया। इससे उस राजकुमार का हृदय परिवर्तित हो गया। उसे अपने किये पाप कर्मों पर पछतावा हुआ। तब ऋषि ने उसे वैशाख शुक्ल एकादशी का व्रत करने की परामर्श दिया। व्रत के प्रभाव से उस दुष्ट राजकुमार की बुद्धि निर्मल हो गई।

बरूथनी एकादशी -वैशाख मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को यह मनाई जाती है। इस दिन व्रत करके जुआ खेलना, नींद, पान, दन्तधावन परनिन्दा, क्षुद्रता, चोरी, हिंसा, रति, क्रोध तथा झूठ को त्यागने का माहात्म्य है ऐसा करने से मानसिक शान्ति मिलती है। व्रती को हविष्यान्न खाना चाहिए। परिवार के सदस्यों को रात्रि को भगवद् भजन करके जागरण भी करना चाहिए।

कथा प्रयोग विधि- प्राचीन काल में नर्मदा तट पर मांधाता नामक राजा राज्य करता था। वह अत्यन्त ही दानशील और तपस्वी राजा था। एक दिन तपस्या करते समय एक जंगली भालू राजा मांधाता को पैर पकड़कर घसीटकर वन में ले गया। राजा घबराकर विष्णु भगवान से प्रार्थना करने लगा। भक्त की पुकार सुनकर विष्णु भगवान् ने सुदर्शन चक्र से भालु को मारकर अपने भक्त की रक्षा की। मांधाता से बोले हे राजन् मथुरा में मेरी वराह अवतार की मूर्ति की पूजा बरुथनी एकादशी का व्रत रखकर करने से पुनः आप पैरों को प्राप्त कर सकेंगे। यह आपके पूर्व जन्मान्तर कृत कर्मों का प्रभाव है। राजा ने भगवान् के निर्देशानुसार विधिविधान से व्रत किया तो उसके प्रभाव से दोनों पैर पुनः प्राप्त हो गए।

कामदा एकादशी-चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी को कामदा एकादशी कहते हैं।

कथा प्रयोग विधि- प्राचीन समय में पुण्डरीक नामक एक राजा नागलोक में राज्य करता था। उसका दरबार किन्नरों एवं गंधर्वों से सदैव भरा रहता था। एक दिन गन्धर्व ललित दरबार में गान कर रहा था कि अचानक उसे अपनी पत्नी की याद आ गई। इससे उसका स्वर, लय और ताल बिगड़ने लगे।

इस त्रुटि को कर्कट नामक नाग ने समझकर यह बात राजा को बता दी। राजा ने क्रोध में आकर ललित को राक्षस होने का श्राप दे दिया। ललित सहस्त्रो वर्ष तक राक्षस योनि में अनेक लोकों में घूमता रहा। उसकी पत्नी भी उसी का अनुकरण करती रही।

अपने पति को इस रूप में देखकर वह बड़ी दुःखी होती। एक दिन घूमते-घूमते ललित की पत्नी ललिता विन्ध्य पर्वत पर रहनेवाले ऋष्यमूक ऋषि के पास गई और अपने श्रापित पति के उद्धार का उपाय का निवेदन करने लगी लगी। ऋषि ने चैत्र शुक्ल पक्ष की कामदा एकादशी व्रत करने का आदेश दिया। इस एकादशी व्रत के प्रभाव से इनका श्राप समाप्त हो गया और अपने गंधर्व स्वरूप को प्राप्त हो गए।

पापमोचिनी एकादशी - चैत्र मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी पापमोचनी एकादशी के रूप में मनाई जाती है। इस दिन भगवान विष्णु का पूजन किया जाता है।

कथा प्रयोग विधि- प्राचीन काल में चित्ररथ नामक एक रमणीक वन था। इस वन में देवराज इन्द्र गन्धर्व कन्याओं एवं देवताओं सहित स्वच्छन्द विहार करते थे। मेधावी नामक ऋषि भी वहाँ पर तपस्या कर रहे थे। ऋषि शिव उपासक तथा अप्सराएँ शिव द्रोहिणी अनंग दासी थी। एक बार कामदेव ने मुनि का तप भंग करने के लिए उनके पास मंजुघोषा नामक अप्सरा को भेजा। युवावस्था वाले मुनि अप्सरा के हाव भाव, नृत्य, गीत तथा कटाक्षों पर काम मोहित हो गये। रति-क्रीड़ा करते हुए 57 वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन मंजुघोषा ने देवलोक जाने की आज्ञा माँगी। आज्ञा माँगने पर मुनि को झटका लगा। उन्हें आत्मज्ञान हुआ कि मुझे रसातल में पहुँचाने का एकमात्र कारण अप्सरा मंजुघोषा ही है। उन्होंने मंजुघोषा को पिशाचनी होने का श्राप दे दिया। श्राप सुनकर मंजुघोषा ने काँपते हुए मुक्ति का उपाय पूछा। तब मुनि ने पापमोचनी एकादशी का व्रत रखने को कहा। वह मुक्ति का उपाय बताकर पिता च्यवन के आश्रम में चले गये। श्राप की बात सुनकर च्यवन ऋषि ने पुत्र की घोर निन्दा की तथा उन्हें पाप मोचनी चैत्र कृष्ण एकादशी का व्रत करने की आज्ञा दी। व्रत के प्रभाव से मंजुघोषा अप्सरा पिशाचनी देह से मुक्त होकर देवलोक पुनः चली गई।

आमल एकादशी - आमल की एकादशी फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी को मनायी जाती है। आँवले के वृक्ष के नीचे बैठकर भगवान का पूजन करना चाहिए।

कथा प्रयोग विधि- प्राचीन काल में भारत में चित्रसेन नाम का राजा हुआ था। उनके राज्य में प्रजा एवं राजा एकादशी का व्रत रखते थे।

एक दिन राजा चित्रसेन शिकार खेलते-खेलते वन में बहुत दूर पहुँच गए। जंगल में जंगली जातियों ने उनपर आक्रमण कर दिया। उनके अस्त्रों शस्त्रों का उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह देखकर जंगली चकित रह गए। देखते-देखते जंगली जाति के आदमियों की संख्या बढ़ गई तो उनके आक्रमण से राजा चित्रसेन संज्ञाहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। पृथ्वी पर गिरते ही राजा के शरीर से एक दिव्य शक्ति प्रकट हुई जो समस्त राक्षसों को मारकर अदृश्य हो गई।

जब राजा की मूर्च्छा टूटी तो उन्हें सब राक्षस मृत पड़े थे। वे बड़े आश्चर्य में पड़कर सोचने लगे कि इन्हें किसने मारा है तभी आकाशवाणी हुई, "ये समस्त राक्षस तुम्हारे आमला एकादशी व्रत के प्रभाव के कारण मारे गये हैं।"

यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ तथा अपने राज्य में उसने आमला एकादशी के व्रत का प्रचार-प्रसार किया फाल्गुन कृष्ण एकादशी" का विधिपूर्वक व्रत कीजिए। पिटक के एक बर्तन को सतनाज पर स्थापित करो। उसके पास पीपल, आम, बड़ तथा गूलर के पत्ते रखो। एक वर्तन जो से भरकर कलश पर स्थापित करो। जौ के बर्तन में श्री लक्ष्मीनारायण जी की प्रतिमा स्थापित करो तथा विधिपूर्वक पूजन करो। रात्रि जागरण के बाद प्रातःकाल जल-सहित कलश को सागर के निमित्त अर्पित कर दो। इस व्रत के प्रभाव से समुद्र आपको रास्ता भी दे देगा तथा रावण पर विजय भी प्राप्त होगी। तभी से इस व्रत का प्रचलन हुआ

विजया एकादशी -"विजया एकादशी" का व्रत फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को रखा जाता है। इस दिन भगवान विष्णु की पूजा की जाती है। पूजन में धूप, दीप, नैवेद्य, नारियल आदि चढ़ाया जाता है।

कथा प्रयोग विधि- इस दिन भगवान राम लंका पर विजय प्राप्त करने के लिए समुद्र तट पर पहुँचे थे। समुद्र ने जब श्रीराम को मार्ग नहीं दिया तो भगवान श्रीराम ने ऋषियों से उपाय पूछा। ऋषियों ने बताया कि हम प्रत्येक शुभ कार्य को शुरू करने से पहले व्रत आदि का अनुष्ठान करते हैं। आप भी करें। जब श्री रामचन्द्र जी से लक्ष्मण जी बोले प्रभु आपसे तो कोई भी बात छिपी नहीं है आप स्वयं परमज्ञानी हैं फिर भी मैं कहूंगा कि परम ज्ञानी वकदाल्भ्य मुनि से हमें समाधान पूछना चाहिए।

भगवान श्रीराम लक्ष्मण सहित वकदाल्भ्य मुनि के आश्रम में पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके अपना प्रश्न उनके समक्ष रखा। ऋषि ने कहा हे राम आप अपनी सेना समेत फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी का व्रत रखें, इस एकादशी के व्रत से आप निश्चित ही समुद्र को पार कर रावण को पराजित कर देंगे। श्री रामचन्द्र जी ने तब उक्त तिथि के आने पर अपनी सेना समेत मुनिवर के अनुसार विधिविधान के अनुसार एकादशी का व्रत रखा और सागर पर पुल का निर्माण कर लंका पर चढ़ाई की। राम और रावण का युद्ध हुआ जिसमें रावण मारा गया।

जया एकादशी -माघ मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी को जया एकादशी कहते हैं।

विधानः भगवान श्रीकृष्ण की पुष्प, जल, अक्षत, रोली तथा विशिष्ट पदार्थों से पूजा करनी चाहिए। भगवान को भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण करना चाहिए।

कथा प्रयोग विधि- प्राचीन काल में इन्द्र की सभा में मान्यवान नाम नंदन वन में उत्सव चल रहा था। इस उत्सव में सभी देवता, सिद्ध संत और दिव्य पुरूष वर्तमान थे। उस समय गंधर्व गायन तथा गंधर्व कन्याएँ नृत्य कर रही थीं। सभा में माल्यवान नामक एक गंधर्व एवं पुष्पवती गंधर्व कन्या का नृत्य चल रहा था। इसी बीच पुष्पवती की नज़र जैसे ही माल्यवान पर पड़ी वह उस पर मोहित हो गयी। पुष्पवती सभा की मर्यादा को भूलकर ऐसा नृत्य करने लगी कि माल्यवान उसकी ओर आकर्षित हो गया। माल्यवान गंधर्व कन्या की भंगिमा को देखकर सुध बुध खो बैठा और गायन की मर्यादा से भटक गया जिससे सुर ताल उसका साथ छोड़ गये।

इन्द्र को पुष्पवती और माल्यवान के अमर्यादित कृत्य पर क्रोध हो आया और उन्होंने दोनों को श्राप दे दिया कि आप स्वर्ग से वंचित हो जाएँ और पृथ्वी पर निवास करें। इस श्राप से तत्काल दोनों पिशाच बन गये और हिमालय पर्वत पर एक वृक्ष पर दोनों का निवास बन गया। यहां पिशाच योनि में इन्हें अत्यंत कष्ट भोगना पड़ रहा था। एक बार माघ शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन दोनो अत्यंत दु:खी थे उस दिन वे केवल फलाहार किए। रात्रि के समय दोनों को बहुत ठंढ लग रही थी अत: दोनों रात भर साथ बैठ कर जागते रहे। ठंढ के कारण दोनों की मृत्यु हो गई इस प्रकार अनजाने में जया एकादशी का व्रत हो गया और दोनों को पिशाच योनि से मुक्ति भी मिल गयी। अब माल्यवान और पुष्पवती पूर्व रूप में स्वर्ग लोक को चले गए।

देवराज ने जब दोनों को देखा तो चकित रह गये और पिशाच योनि से मुक्ति कैसी मिली यह पूछा। माल्यवान के कहा यह भगवान विष्णु की जया एकादशी का प्रभाव है। हम इस एकादशी के प्रभाव से पिशाच योनि से मुक्त हुए हैं। इन्द्र इससे अति प्रसन्न हुए और कहा कि आप जगदीश्वर के भक्त हैं अतः आप अब से मेरे लिए आदरणीय है आप स्वर्ग में आनन्द पूर्वक विहार करें।

कथा सुनकार श्री कृष्ण ने यह बताया कि जया एकादशी के दिन जगपति जगदीश्वर भगवान विष्णु ही सर्वथा पूजनीय हैं। जो श्रद्धालु भक्त इस एकादशी का व्रत रखते हैं उन्हें दशमी तिथि से को एक समय आहार करना चाहिए।

षट्तिला एकादशी -माघ मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को षट्तिला एकादशी कहते हैं। इसमें छः प्रकार के तिल प्रयोग होने के कारण इसे षट्तिला एकादशी कहते हैं। पंचामृत में तिल मिलाकर पहले भगवान विष्णु को स्नान कराया जाता है। इस दिन तिल में मिश्रित भोजन करते हैं। दिन में हरि कीर्तन कर रात्रि में भगवान की प्रतिमा के सामने सोना चाहिए।

कथाः प्राचीन काल में वाराणसी में एक गरीब अहीर रहता था। वह जंगल से लकड़ी काट कर बेचने का काम इस बात का ध्यान रखें कि आहार सात्विक हो। एकादशी के दिन श्री विष्णु का ध्यान करके संकल्प करें और फिर धूप, दीप, चंदन, फल, तिल, एवं पंचामृत से विष्णु की पूजा करे।

व्रती के सामान्य नियम-

जो लोग श्रद्धा भाव से एकादशी का व्रत रखना चाहते है वे

एकादशी के व्रत में दशमी तिथि से ही व्रती को नियमों का पालन चाहिए और एकादशी के दिन व्रत रखें तथा रात्रि में श्रद्धा अनुनासार जागरण कर भगवान का ध्यान करें तत्पश्चात् द्वादशी तिथि को पारण करना

4.2. प्रदोषव्रत- प्रदोष व्रत

प्रदोष का अर्थ है रात्रि का शुभारम्भ। इस व्रत के पूजन का विधान इसी समय होता है। इसलिए इसे प्रदोष व्रत कहते हैं। यह व्रत शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को किया जाता है। इसका उद्देश्य सन्तान की कामना है। इस व्रत को स्त्री पुरुष दोनों ही कर सकते हैं। इस व्रत के उपास्य देव भगवान शंकर हैं।

सांयकाल को व्रत करने वाले को शिव शंकर की पूजा करके अल्प आहार करना चाहिए। कृष्ण पक्ष का शनि प्रदोष विशेष पुण्यदायी होता है। शंकरजी का दिन सोमवार है। इसदिन पड़ने वाला प्रदोष सोम प्रदोष कहलाता है। प्रदोष व्रत के लिए श्रावण के प्रत्येक सोमवार का विशेष महत्त्व है।

कथाः प्राचीन काल में एक ब्राह्मणी विधवा हो गई थी। वह भिक्षा माँगकर अपना तथा अपने पुत्र का जीवन निर्वाह करती थी। वह अपने पुत्र को लेकर सुबह निकलती और रात को घर लौटती। एक दिन उसे विदर्भ देश का राजकुमार मिला जो अपने पिता की मृत्यु के कारण इधर उधर मारा मारा फिर रहा था। ब्राह्मणी को राजकुमार पर दया आ गई और उसे अपने साथ घर ले गई। उसने उसे पुत्रवत पाला। एक दिन वह दोनों बालकों को लेकर शांडिल्य ऋषि के आश्रम में गई। ऋषि से भगवान शंकर के पूजन की विधि जानकर वह प्रदोष व्रत करने लगी।

एक दिन दोनों बालक वन में घूम रहे थे। उन्होंने वहाँ गर्थव कन्याओं को क्रीड़ा करते देखा। ब्राह्मण कुमार तो घर लौट आया परन्तु राजकुमार अंशुमती नामक गन्धर्व कन्या से बात करने लगा। वह देर से घर लौटा। दूसरे दिन भी उसी स्थान पर राजकुमार पहुँच गया। अंशुमती अपने माता-पिता के साथ बैठी हुई थी। माता-पिता ने राजकुमार से कहा कि भगवान शंकर की आज्ञा से अंशुमती का विवाह तुम्हारे साथ करेंगे। राजकुमार शादी के लिए तैयार हो गया। दोनों का विवाह हो गया। उसने गन्धर्व राजा विद्रविक की विशाल सेना लेकर विदर्भ पर अधिकार कर लिया। उसने ब्राह्मणी एवं उसके पुत्र को अपने महल में आदर के साथ रख लिया।

यह प्रदोष व्रत का ही फल था तभी से समाज में प्रदोष व्रत की प्रतिष्ठा हुई।

4.3. **श्रीरामनवमी व्रतोत्सव-** इस व्रत की चारों जयन्तियों में गणना है। यह चैत्र शुक्ल नवमी को किया जाता है, इसमें मध्याह्नव्यापिनी शुद्धा तिथि स्वीकार करें और दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी हो या दोनों दिनों में ही न हो तो पहला व्रत करना चाहिए। इसमें अष्टमी का वेध हो तो निषेध नहीं, दशमी का वेध वर्जित है। यह व्रत नित्य, नैमित्तिक और काम्य-तीन प्रकार का है। नित्य होने से इसे निष्काम भावना रखकर आजीवन किया जाए तो उसका अनन्त और अमिट फल होता है और किसी निमित्त या कामना से किया जाए तो उसका यथेच्छ फल मिलता है। भगवान् रामचन्द्र का जन्म हुआ, उस समय चैत्र शुक्ल नवमी, गुरुवार, पुष्य (या दूसरे मतसे पुनर्वसु), मध्याह्न और कर्क लग्न था। उत्सवके दिन ये सब तो सदैव आ नहीं सकते, परंतु जन्मक्ष कई बार आ जाता है; अतः वह हो तो उसे अवश्य लेना चाहिए। जो मनुष्य रामनवमी का भक्ति और विश्वास के साथ व्रत करते हैं, उनको महान् फल मिलता है। व्रती को चाहिए कि व्रत के पहले दिन (चैत्र शुक्ल अष्टमी को) प्रातः स्नानादि कर भगवान् रामचन्द्र का स्मरण

करें। दूसरे दिन चैत्र शुक्ल नवमी को नित्यकृत्य से अति शीघ्र निवृत्त होकर 'उपोष्य नवमी त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव। **तेन प्रीतो भव त्वं भो संसारात्त्राहि मां हरे** ।।' इस मन्त्र से भगवान् के प्रति व्रत करने की भावना प्रकट करें और 'मम भगवत्प्रीतिकामनया (वामुकफल- प्राप्तिकामनया) रामजयन्तीव्रतमहं करिष्ये' यह संकल्प करके काम-क्रोध-लोभ-मोहादि से वर्जित होकर व्रत करें। तत्पश्चात् मन्दिर अथवा अपने मकान को ध्वजा-पताका, तोरण और बंदनवार आदिसे सुशोभित करके उसके उत्तर भागमें रंगीन कपड़े का मण्डप बनाएँ और उसके अन्दर सर्वतोभद्रमण्डल की रचना करके उसके मध्यभाग में यथाविधि कलश स्थापन करें। कलश के ऊपर रामपंचायतन (जिसके मध्य में राम-सीता, दोनों पार्श्व में भरत और शत्रुघ्न, पृष्ठ-प्रदेश में लक्ष्मण और पादतल में हनुमान् जी) की सुवर्ण निर्मित मूर्ति स्थापन करके उसका आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करें। व्रतराज, व्रतार्क, जयसिंहकल्पद्रुम और विष्णुपूजन आदि में वैदिक और पौराणिक दोनों प्रकार की पूजनविधि है। उसके अनुसार पूजन करें। उस दिन दिनभर सदा भगवान् का भजन-स्मरण, स्तोत्रपाठ, दान-पुण्य, हवन, पितृश्राद्ध और उत्सव करें और रात्रि में उत्तम प्रकार के गायन-वादन-नर्तन (रामलीला) और चरित्र-श्रवणादि के द्वारा जागरण करें तथा दूसरे दिन (दशमी को) पारण करके व्रत का विसर्जन करें। सामर्थ्य हो तो सुवर्ण की मूर्तिका दान और ब्राह्मण-भोजन कराएँ एवं इस प्रकार प्रतिवर्ष करते रहे।

1. **अष्टम्या नवमी विद्धा कर्तव्या फलकांक्षिभिः। न कुर्यान्नवमी तात दशम्या तु कदाचन ॥**

2. **नित्यं नैमित्तिकं काम्यं व्रतं वेति विचार्यते। निष्कामानां विधानात्तु तत् काम्यं तावदिष्यते ॥**

3. **श्रीरामश्चैत्रमासे दिनदलसमये पुष्यभे कर्कलग्ने जीवेन्दोः कीटराशे मृगभगतकुजे ज्ञे झपे मेषगेऽर्के। मन्दे जूकेऽङ्गनायां तमसि शफरिगे भार्गवेये नवम्यां पञ्चोच्चे चावतीर्णो दशरथतनयः प्रादुरासीत् स्वयम्भूः ॥** (विष्णुधर्मोत्तर)

अगस्त्य संहिता के अनुसार प्रयोग कथा-

चैत्र शुक्ला नवमी को पुवर्वसु नक्षत्र में, गुरुनवांश में, उच्चस्थ ग्रह पञ्चक में और मेष राशि में कर्कटं योग होने पर कौशल्या से परमपुरुष भगवान् रामचन्द्रजी का आविर्भाव हुआ था अतः रामनवमी का व्रत का उस दिन उपवास करें और रात्रि में जागरण करते हुए प्रातःकाल विधि के साथ भगवान्-रामचन्द्रजी का पूजन करें। अपनी सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराएँ और गाय, भूमि, सुवर्ण, तिल, वस्त्र,

अलङ्कार और भूषण आदि दक्षिणा में दे। जो मनुष्य इस प्रकार रामनवमी के व्रतको करता है, उसके अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं एवं वह विष्णुभगवान् के परम पद को प्राप्त करता है।

उपर्युक्त कथा को सुनकर "सुतीक्ष्ण" ऋषि ने अगस्त्यजी से प्रश्न किया है कि-

श्रीरामप्रतिमादानं, विधानम्वा कथं मुने !

कथयस्व मुनि-श्रेष्ठ ! भक्तस्य मम विस्तरात् ॥

अगस्त्यजी कहते हैं कि

कथयिष्यामि तद्विद्वन् ! प्रतिमादानमुत्तमम् ।

विधानञ्चापि यत्नेन, यतस्त्वं वैष्णवोत्तमः ॥

"हे मुने! श्रीरामनवमी पर रामचन्द्रजी की प्रतिमा का दान किस प्रकार से होता है, कृपाकर कहें। अगस्त्यजी बोले, हे सुतीक्ष्ण ! तुम वैष्णव हो, इस कारण प्रतिभावान की विधि कहता हूँ - श्रवण करो।" चैत्र शुक्ल पक्ष की अष्टमी को जितेन्द्रिय रहे और नवमी को प्रातःकाल दन्त धावन पूर्वक नदी या तालाब में स्नान करके, सन्ध्यावन्दन करें एवं भगवान् रामचन्द्रजी का ध्यान करने के पश्चात् भवन में आकर हरि-भक्त और वेद शास्त्रनिष्णात ब्राह्मण को बुलाकर प्रार्थना करे, - "भगवन्! आप मेरे आचार्य बनें। मैं आपको प्रतिमा दान करूँगा क्योंकि आप मेरे लिए साक्षात् भगवान् श्रीरामजी हैं। इस प्रकार उनको तैल्याभ्यंग कर आभूषणों से अलंकृत कर और गन्ध आदि से पूजन कर, प्रीति पूर्वक भोजन कराकर और हृदय से भगवान रामचन्द्र जी का स्मरण करता हुआ स्वयं भी भोजन करें।

नवमी को प्रातःकाल उठकर दन्त-धावन तथा स्नान करें और ध्वजा, तोरण आदि से गृह को सजा कर तथा एक भव्य मण्डप बनाकर, उसमें वेदी स्थापित करें। उस सर्वतोभद्र वेदी पर दो पल वजन वाली स्वर्ण की भगवान् रामचन्द्रजी की द्विभुजी मूर्ति बनवाकर स्थापित करें और विधि विधान से उसका पूजन कर रात्रि में जागरण भी करें। दशमी को प्रातःकात उठकर, सन्ध्यावन्दन आदि कृत्य से निवृत्त होकर, भक्तिपूर्वक प्रतिमा का अर्चन कर घृत और खीर की 108 आहुतियों से हवन करने के पश्चात् आचार्य का भी पूजन व प्रार्थना करें-

"इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलंकृताम् ।

चित्र-वस्त्र-युगच्छन्नां, रामोऽहं राघवाय ते ॥

श्रीरामप्रीतये दास्ये, तुष्टो भवतु राघवः ॥"

इस मन्त्र का उच्चारण कर आचार्य को प्रतिमा का दान करें और प्रतिमा के साथ यथाशक्ति के अनुसार गाय, स्वर्ण आदि दक्षिणा दे तथा ब्राह्मण-भोजन कराकर उन ब्राह्मणों को भी दक्षिणा दें। इस प्रकार से व्रतका उद्यापन कर, आप भी भोजन करें। इस प्रकार"रामनवमी व्रत के करने से जन्मान्तर कृत पापों का क्षय होकर, अनायास ही मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है।

शिक्षा- भगवान् रामचन्द्रजी का अवतार संसार में लोक मर्यादा स्थापित करने के लिए ही हुआ था, इसी कारण लोक में जिस प्रकार माता पिता और आचार्यकी प्रतिष्ठा करना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य माना गया है, वैसा ही "मातृदेवो भव" "पितृदेवो भव" "आचार्यदेवो भव" इत्यादि वाक्यों से माता पिता और आचार्य को देवतुल्य मानकर उनके वचनों का पालन करना भी वैदिक धर्म है। इस धर्म को भगवान् रामचन्द्रजी ने निभाया था। यथा-

स तन्नियोगात् खलु सत्यवादी, सत्यां प्रतिशां नृप पालयंस्ते।

इतो महात्मा वनमेव रामो, गतः सुत्राण्यप्रतिमानि हित्वा ॥

इस प्रकार हमें रामजी के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए।

4.4. सङ्कटचतुर्थीव्रत- एक समय की बात है कि विष्णु भगवान का विवाह लक्ष्मीजी के साथ निश्चित हो गया। विवाह की तैयारी होने लगी। सभी देवताओं को निमंत्रण भेजे गए, परंतु गणेशजी को निमंत्रण नहीं दिया, कारण जो भी रहा हो

जैसे ही भगवान विष्णु की बारात जाने का समय आया तो सभी देवता अपनी पत्नियों के साथ विवाह समारोह में आए। उन सबने देखा कि गणेशजी कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं। तब वे आपस में चर्चा करने लगे कि क्या गणेशजी को निमन्त्रण नहीं गया है ? या स्वयं गणेशजी ही नहीं आए हैं? सभी को इस बात पर आश्चर्य होने लगा। तभी सबने विचार किया कि विष्णु भगवान से ही इसका कारण पूछा जाए।

विष्णु भगवान से पूछने पर उन्होंने कहा कि हमने गणेशजी के पिता भोलेनाथ महादेव को न्योता भेजा है। यदि गणेशजी अपने पिता के साथ आना चाहते तो आ जाते, अलग से न्योता देने की कोई आवश्यकता भी नहीं थीं। दूसरी बात यह है कि उनको सवा मन मूंग, सवा मन चावल, सवा मन घी और सवा मन लड्डू का भोजन दिनभर में चाहिए। यदि गणेशजी नहीं आएंगे तो कोई बात नहीं। दूसरे के घर जाकर इतना भोजन अच्छा भी नहीं लगता।

वार्ता कर ही रहे थे कि किसी एक ने सुझाव दिया- यदि गणेशजी आ भी जाएं तो उनको द्वारपाल बनाकर बैठा देंगे कि आप घर की याद रखना। आप तो चूहे पर बैठकर धीरे-धीरे चलोगे तो बारात से बहुत पीछे रह जाओगे। यह सुझाव भी सबको पसंद आ गया, तो विष्णु भगवान ने भी अपनी सहमति दे दी।

होना क्या था कि इतने में गणेशजी वहां आ पहुंचे और उन्हें समझा-बुझाकर घर की रखवाली करने बैठा दिया। बारात चल दी, तब नारदजी ने देखा कि गणेशजी तो दरवाजे पर ही बैठे हुए हैं, तो वे गणेशजी के पास गए और रुकने का कारण पूछा। गणेशजी कहने लगे कि विष्णु भगवान ने मेरा बहुत अपमान किया है। नारदजी ने कहा कि आप अपनी मूषक सेना को आगे भेज दें, तो वह रास्ता खोद देगी जिससे उनके वाहन धरती में धंस जाएंगे, तब आपको सम्मानपूर्वक बुलाना पड़ेगा।

अब तो गणेशजी ने अपनी मूषक सेना शीघ्र ही आगे भेज दी और सेना ने जमीन पोली कर दी। जब बारात वहाँ से निकली तो रथों के पहिए धरती में धंस गए। सभी ने अनेकानेक प्रयासकिए, परंतु पहिए नहीं निकले। सभी ने अपने-अपने उपाय किए, लेकिन पहिए तो नहीं निकले, बल्कि जगह-जगह से टूट गए। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या किया जाए।

तब तो नारदजी ने कहा- आप लोगों ने गणेशजी का अपमान करके अच्छा नहीं किया। यदि उन्हें मनाकर लाया जाए तो आपका कार्य सिद्ध हो सकता है और यह संकट टल सकता है। शंकर भगवान ने अपने दूत नंदी को भेजा और वे गणेशजी को लेकर आए। गणेशजी का आदर-सम्मान के साथ पूजन किया, तब कहीं रथ के पहिए निकले। अब रथ के पहिए निकल को गए, परंतु वे टूट-फूट गए, तो उन्हें सुधारे कौन?

पास के खेत में खाती काम कर रहा था, उसे बुलाया गया। खाती अपना कार्य करने के पहले 'श्री गणेशाय नम: बोलकर गणेशजी की वंदना मन ही मन करने लगा। देखते ही देखते खाती ने सभी पहियों को ठीक कर दिया।

वह खाती कहने लगा कि हे देवताओं! आपने सर्वप्रथम गणेशजी को नहीं मनाया होगा और न ही उनका पूजन किया होगा इसी कारण तो यह संकट आया है। हम तो मूरख अज्ञानी हैं, फिर भी पहले गणेशजी को पूजते हैं, उनका ध्यान करते हैं। आप लोग तो देवतागण हैं, फिर भी आप गणेशजी को कैसे भूल गए? अब आप लोग भगवान श्री गणेशजी की जय बोलकर जाएँ, तो आपके सब कार्य बन जाएंगे और कोई संकट भी नहीं आएगा।

ऐसा कहते हुए बारात वहाँ से चल दी और विष्णु भगवान का लक्ष्मीजी के साथ विवाह संपन्न कराके सभी सकुशल घर लौट आए।

4.5. ऋषिपञ्चमीव्रत- भाद्रपद शुक्ल पंचमी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण की स्त्रियों को चाहिए कि वे नद्यादि पर स्नानकर अपने घर के शुद्ध स्थल में हरिद्रा आदि से चौकोर मण्डल बनाकर उस पर सप्तर्षियों का स्थापन करें और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्यादि से पूजनकर **'कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः। जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥ दहन्तु पापं मे सर्वं गृह्णन्त्वर्घ्यं नमो नमः ।।' से अर्घ्य दें।** इसके बाद अकृष्ट (बिना बोई हुई) पृथ्वी में पैदा हुए शाकादि का आहार करके ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक व्रत करें। इस प्रकार सात वर्ष करके आठवें वर्ष में सप्तर्षियों की सुवर्णमय सात मूर्ति बनवाकर कलश स्थापन करके यथाविधि पूजनकर सात गोदान और सात युग्मक ब्राह्मण- भोजन कराकर उनका विसर्जन करें। किसी देश में इस दिन स्त्रियाँ पंचताड़ी तृण एवं भाई के दिये हुए चावल आदि की कौए आदि को बलि देकर फिर स्वयं भोजन करती हैं। (ब्रह्मपुराण)

अनन्तव्रत (स्कन्द-ब्रह्म-भविष्यादि) - यह व्रत भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी को किया जाता है। इसमें उदयव्यापिनी तिथि ली जाती है। पूर्णिमा का सहयोग होने से इसका फल बढ़ जाता है। कथा के अनुरोध से मध्याह्न तक चतुर्दशी रहे तो और भी अच्छा है। व्रती को चाहिए कि उस दिन प्रातः स्नानादि करके **'ममाखिलपापक्षयपूर्वकशुभफलवृद्धये श्रीमदनन्तप्रीतिकामनया अनन्तव्रतमहं करिष्ये'** ऐसा संकल्प करके वासस्थान को स्वच्छ और सुशोभित करें। यदि बन सके तो एक स्थान को या चौकी आदि को मण्डपरूप में परिणत करके उसमें भगवान् की साक्षात् अथवा दर्भ से बनायी हुई सात फणों वाली शेषस्वरूप अनन्तकी मूर्ति स्थापित करें। उसके आगे 14 गाँठ का अनन्त दोरक रखे और नवीन आम्रपल्लव एवं गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यादिसे पूजन करें। पूजनमें पंचामृत, पंजीरी, केले और मोदकादिका प्रसाद अर्पण करके '**नमस्ते देव देवेश नमस्ते धरणीधर। नमस्ते सर्वनागेन्द्र नमस्ते पुरुषोत्तम॥**' से नमस्कार करें और '**न्यूनातिरिक्तानि परिस्फुटानि यानीह कर्माणि मया कृतानि। सर्वाणि चैतानि मम क्षमस्व प्रयाहि तुष्टः पुनरागमनाय॥**' इससे विसर्जन करके '**दाता च विष्णुर्भगवाननन्तः प्रतिग्रहीता च स एव विष्णुः। तस्मात्त्वया सर्वमिदं ततं च प्रसीद देवेश वरान् ददस्व॥** से वायन दान करके कथा सुने और जिनमें नमक नहीं हो ऐसे पदार्थों का भोजन करें।

कथा का सार यह है कि प्राचीन काल में सुमन्तु ब्राह्मण की सुशीला कन्या का कौण्डिन्य से विवाह किया था। उन्होंने दीन पत्नियों से पूछकर अनन्त- व्रत धारण किया। एक बार कुयोगवश कौण्डिन्य ने अनन्त के डोरे को तोड़कर आग में पटक दिया। उससे उनकी सम्पत्ति नष्ट हो गई। तब वह दुःखी होकर अनन्त को देखने वनमें चले गए। वहाँ आम्र, गौ, वृष, खर, पुष्करिणी और वृद्ध ब्राह्मण मिले। ब्राह्मण स्वयं अनन्त थे। वे उसे गुहा में ले गए। वहाँ जाकर बतलाया कि वह आम वेदपाठी ब्राह्मण था, विद्यार्थियों को न पढ़ाने से 'आम' हुआ। गौ पृथ्वी थी, बीजापहरण से 'गौ' हुई। वृष धर्म, खर क्रोध और पुष्करिणी बहिनें थीं। दानादि परस्पर लेने-देने से 'पुष्करिणी' हुई और वृद्ध ब्राह्मण मैं हूँ। अब तुम घर जाओ। रास्तेमें आम्रादि मिलें उनसे संदेशा कहते जाओ और दोनों स्त्री-पुरुष व्रत करो, सब आनन्द होगा।' इस प्रकार 14 वर्ष (या यथासामर्थ्य) व्रत करें। फिर नियत अवधि पूरी होने पर भाद्रपद शुक्ल 14 को उद्यापन करें। उसके लिए 'सर्वतोभद्रस्थ कलशपर कुशनिर्मित या सुवर्णमय अनन्त की मूर्ति और सोना, चाँदी, ताँबा, रेशम या सूत्रका (14 ग्रन्थियुक्त) अनन्त दोरक स्थापन करके उनका वेदमन्त्रों से पूजन और तिल, घी, खाँड, मेवा एवं खीर आदि से हवन करके गोदान, शय्यादान, अन्नदान (14 घट, 14 सौभाग्यद्रव्य और 14 अनन्त दान) करके 14 युग्म ब्राह्मणों को भोजन कराए और फिर स्वयं भोजन करके व्रत को समाप्त करें।

प्रयोगविधि-

विदर्भ देश मे एक उत्तंक नामक ब्राह्मण रहना था। पातिव्रत- धर्म मे अग्रगण्या उसकी स्त्री का नाम सुशीला था। उस ब्राह्मण के घर में केवल दो सन्ताने थीं एक कन्या और एक पुत्र। पुत्र परम्परागत संस्कारों के कारण थोड़ी ही उम्र मे सम्पूर्ण वेद-शास्त्रों का ज्ञाता हो गया था। यद्यपि उसकी बहन भी बहुत सुशीला थी और अच्छे कुल मे व्याही थी, किन्तु किसी पूर्व जन्मार्जित पाप के कारण वह विधवा हो गई थी। उसी दुःख से संतप्त वह ब्राह्मण अपनी कन्या-सहित गंगा के किनारे पर वास करने लगा और वहाँ धर्म-चर्चा करते हुए काल बिताने लगा। कन्या अपने पिता की सेवा-सुश्रूषा करती थी और पिता अनेक ब्रह्मचारियों को वेद पढ़ाता था। एक दिन सोती हुई कन्या के शरीर मे अकस्मात् कीड़े पड़ गये। कन्या ने अपनी दशा देखकर माता से कहा। माता ने कन्या के इस दुःख से दुखी होकर बहुत पश्चात्ताप किया और उसने पति को सब वृत्तान्त सुनाकर पूछा- "हे भगवन्। मेरी इस परम साध्वी कन्या की यह दशा क्यों हो गई ?"

उत्तंक ने प्रथम तो समाधिस्थ होकर इस घटना के कारण का विचार किया और स्त्री को उत्तर दिया कि पूर्वजन्म से यह कन्या ब्राह्मणी थी। इसने रजस्वला अवस्था में अपने बरतनों का स्पर्श किया। इसी पाप के कारण इसके शरीर में कीड़े पड़ गये हैं। धर्म-शास्त्र मे लिखा है कि रजस्वला स्त्री प्रथम दिन चाण्डालिनी के समान, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी के समान और तीसरे दिन धोबिनी के समान अपवित्र रहती है। चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होती है। इसके अतिरिक्त इस कन्या ने इसी जन्म में एक और भी अपराध किया है। वह यह कि इसने स्त्रियों को ऋषिपञ्चमी का व्रत करते देखकर उनकी अवहेलना की। अतः इसके शरीर में कीड़े पड़ने का एक यह भी कारण है। उक्त व्रत की विधि को देखने के कारण हो इसने ब्राह्मण-कुल में जन्म पाया है; अन्यथा यह चाण्डाल के घर जन्म लेती। हे प्रिये! ऋषिपञ्चमी का व्रत सब व्रतों मे प्रधान है, क्योंकि इसी के प्रभाव से स्त्रियाँ सौभाग्य को प्राप्त करती है और रजस्वला होने की अवस्था में अज्ञानपूर्वक होनेवाले स्पर्शादि दोषों से मुक्त हो जाती है।

4.6.चैत्रनवरात्रि व्रत- चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघ की शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक नौ दिन के होते हैं; लेकिन प्रसिद्धि में चैत्र और आश्विन के नवरात्र ही मुख्य माने जाते हैं। इनमें भी देवीभक्त आश्विन के नवरात्र अधिक करते हैं, इनको यथाक्रम वासन्ती और शारदीय नवरात्र कहते हैं, इनका आरम्भ चैत्र और आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को होता है। अतः यह प्रतिपदा 'सम्मुखी' शुभ होती है।नवरात्रों के आरम्भ में अमायुक्त प्रतिपदा अच्छी नहीं। आरम्भ में घटस्थापन के समय यदि चित्रा और वैधृति हों तो उनका त्याग कर देना चाहिए; क्योंकि चित्रा में धन का और वैधृति में पुत्र का नाश होता है। घटस्थापन का समय 'प्रातः काल' है। अतः उस दिन चित्रा या वैधृति रात्रि तक रहें (और रात्रि में नवरात्रों का स्थापन या आरम्भ होता नहीं,) तो या तो वैधृत्यादि के आद्य तीन अंश त्यागकर चौथे अंश में करें या मध्याह्न के समय (अभिजित् मुहूर्त में) स्थापन करें। स्मरण रहे कि देवी का आवाहन, प्रवेशन, नित्यार्चन और विसर्जन- ये सब प्रातःकालमें शुभ होते हैं। स्त्री और पुरुष, सबको नवरात्र करना चाहिए। यदि किसी कारणवश स्वयं नहीं कर सकें तो प्रतिनिधि (पति-पत्नी, ज्येष्ठ पुत्र, सहोदर या ब्राह्मण) द्वारा करायें। नवरात्र नौ रात्रि पूर्ण होने से पूर्ण होता है अतः यदि इतना समय न मिले या सामर्थ्य न हो तो सात, पाँच, तीन या एक दिन व्रत करें और व्रत में भी उपवास, अयाचित, नक्त या एकभुक्त - जो बन सके यथासामर्थ्य वही कर ले। यदि नवरात्रों में घटस्थापन करने के बाद सूतक हो जाए तो कोई दोष नहीं, लेकिन पहले

हो जाए तो पूजनादि स्वयं न करें। चैत्र के नवरात्र में शक्ति की उपासना तो प्रसिद्ध ही है; साथ ही शक्तिधर की उपासना भी की जाती है। उदाहरणार्थ एक ओर देवीभागवत, कालिकापुराण, मार्कण्डेयपुराण, नवार्णमन्त्र के पुरश्चरण और दुर्गापाठ की शतसहस्रायुतचण्डी आदि होते हैं तो दूसरी ओर श्रीमद्भागवत, अध्यात्म-रामायण, वाल्मीकीय रामायण, तुलसीकृत रामायण, राममन्त्र-पुरश्चरण, एक-तीन पाँच-सात दिनकी या नवाह्निक अखण्ड रामनामध्वनि और रामलीला आदि किए जाते हैं। यही कारण है कि ये 'देवी-नवरात्र' और 'राम-नवरात्र' नामों से प्रसिद्ध हैं। नवरात्र का प्रयोग प्रारम्भ करने के पहले सुगन्धयुक्त तैल के उद्वर्तनादि से मंगलस्नान करके नित्यकर्म करें और स्थिर शान्ति के पवित्र स्थान में शुभ मृत्तिका की वेदी बनाएँ। उसमें जौ और गेहूँ- इन दोनों को मिलाकर बोकर तथा उसी स्थान पर सोने, चाँदी, ताँबे या मिट्टी के कलश को यथाविधि स्थापन करके गणेशादि का पूजन और पुण्याहवाचन करें और पीछे देवी या देव के समीप शुभासन पर पूर्व या उत्तराभिमुख बैठकर 'मम महामायाभगवती (वा मायाधिपति भगवत्) प्रीतये (आयुर्बलवित्तारोग्यसमादरादिप्राप्तये वा) नवरात्रव्रतमहं करिष्ये।' यह संकल्प करके मण्डल के मध्य में रखे हुए कलश पर सोने, चाँदी, धातु, पाषाण, मृत्तिका या चित्रमय मूर्ति विराजमान करें और उसका आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, नीराजन, पुष्पांजलि, नमस्कार और प्रार्थना आदि उपचारों से पूजन करें। इसके बाद यदि सामर्थ्य हो तो नौ दिन तक और यदि सामर्थ्य न हो तो सात, पाँच, तीन या एक) कन्याओं को देवी मानकर उनको गन्ध-पुष्पादि से अर्चित करके भोजन कराएँ और फिर स्वयं भोजन कर सकते हैं। व्रती को चाहिए कि उन दिनों में भूशयन, अल्पाहार, ब्रह्मचर्य का पालन, क्षमा, दया, उदारता एवं उत्साहादि की वृद्धि और क्रोध, लोभ, मोहादि का त्याग करें। इस प्रकार नौ रात्रि व्यतीत होने पर दसवें दिन प्रातः काल में विसर्जन करें तो सब प्रकार के विपुल सुख-साधन सदैव प्रस्तुत रहते हैं और भगवान् या देवी प्रसन्न होते हैं।

नवरात्रि स्थापना महोत्सव

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा नवरात्र प्रारम्भ (विक्रम संवत घट स्थापना, भगवती के शैलपुत्री रूप की उपासना, शुक्ल द्वितीया भगवती के ब्रह्मचारिणी रूप की पूजा, शुक्ल तृतीया भगवती के चन्द्रघण्टा रूप की उपासना,

शुक्ल चतुर्थी भगवती के कूष्माण्डा रूप की उपासना, शुक्ल पञ्चमी भगवती के स्कन्दमाता रूप की उपासना, शुक्ल षष्ठी भगवती के कात्यायनी रूप की उपासना, चैत्र शुक्ल सप्तमी भगवती के कालरात्रि रूप की उपासना,शुक्ल अष्टमी भगवती महागौरी की उपासना, शुक्ल नवमी भगवती सिद्धिदात्री की उपासना आदि।

4.7. शारदीयनवरात्रि व्रत- ये आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी पर्यन्त होते हैं। इनका आरम्भ अमायुक्त प्रतिपदा में वर्जित है और द्वितीया युक्त प्रतिपदा में शुभ है। नव रात्रियों तक व्रत करने से 'नवरात्र' व्रत पूर्ण होता है; तिथि की ह्रास-वृद्धि से इनमें न्यूनाधिकता नहीं होती। प्रारम्भ के समय यदि चित्रा नक्षत्र और वैधृति हों तो उनके उतरने के बाद व्रत का प्रारम्भ होना चाहिए लेकिन देवी का आवाहन, स्थापन और विसर्जन ये तीनों प्रातः काल में होते हैं; अतः यदि चित्रादि अधिक समय तक हों तो उसी दिन अभिजित् मुहूर्त में आरम्भ करना चाहिए। वैसे तो वासन्ती नवरात्रों में विष्णु की और शारदीय नवरात्रों में शक्ति की उपासना की महता है परन्तु ये दोनों ही बहुत व्यापक हैं, अतः दोनों की उपासना होती है। इनमें किसी वर्ण, विधान या देवादि की भिन्नता नहीं है; सभी वर्ण अपने अभीष्ट की उपासना करते हैं। यदि नवरात्रि पर्यन्त व्रत रखने की सामर्थ्य नहीं हो तो (1) प्रतिपदा से सप्तमी पर्यन्त 'सप्तरात्र;' (2) पंचमी को एकभुक्त, षष्ठी को नक्तव्रत, सप्तमी को अयाचित, अष्टमी को उपवास और नवमी के पारण से 'पंचरात्र;' (3) सप्तमी, अष्टमी और नवमी के एकभुक्त व्रत से 'त्रिरात्र;' (4) आरम्भ और समाप्ति के दो व्रतों से 'युग्मरात्र' और (5) आरम्भ या समाप्ति के एक व्रतसे 'एकरात्र' के रूपमें जो भी किए जाएँ, उन्हीं से अभीष्ट की सिद्धि होती है। आरम्भ में शुभस्थान की मृत्तिका से वेदी बनाकर उसमें जौ, गेहूँ बोकर उन पर यथा सामर्थ्य सुवर्णादि का कलश स्थापित करें और कलश पर सोना, चाँदी, ताँबा, मृत्तिका, पाषाण या चित्रमय मूर्ति की प्रतिष्ठा करें। मूर्ति यदि मिट्टी, कागज या सिन्दूर आदि की हो और स्नान से उसके नष्ट हो जाने का डर हो तो या तो उसपर दर्पण लगा देना चाहिए या खड्गादि को उसमें परिणत करना चाहिए। मूर्ति न होने की अवस्था में कलश के पीछे को स्वस्तिक और उसके युग्म-पार्श्व में त्रिशूल बनाकर दुर्गा का तथा चित्र, पुस्तक या शालग्रामादि को विराजमानकर विष्णुका पूजन करें। पूजा राजसी, तामसी और सात्त्विकी-तीन प्रकार की होती है; इनमें सात्त्विकी का सर्वाधिक प्रचार है। नवरात्र व्रत आरम्भ करते समय सर्वप्रथम गणपति, मातृका, लोकपाल, नवग्रह और वरुण का पूजन, स्वस्ति वाचन और मधुपर्क ग्रहण करके प्रधान मूर्ति की-जो राम-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण या शक्ति, भगवती, देवी आदि

किसी भी अभीष्ट देव की हो वेदविधि या पद्धति क्रम से अथवा अपने साम्प्रदायिक विधान से पूजा करें। देवी के नवरात्र में महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती का पूजन तथा सप्तशती का पाठ मुख्य है। यदि पाठ करना हो तो देवतुल्य पुस्तक का पूजन करके 1, 3, 5 आदि विषम संख्या के पाठ करने चाहिए और पाठ में विशेष ब्राह्मण हों तो उनकी संख्या भी 1, 3, 5 आदि विषम ही होनी चाहिए। फल सिद्धि के लिए 1, उपद्रव शान्ति के लिए 3, सामान्यतः सब प्रकार की शान्ति के लिए 5, भय से छूटने के लिए 7, यज्ञफल की प्राप्ति के लिए 9, राज्य के लिए 11, कार्यसिद्धि के लिए 12, किसी को वश में करने के लिए 14, सुख-सम्पत्ति के लिए 15, धन और पुत्र के लिए 16, शत्रु, रोग और राजा के भय से छूटने के लिए 17, प्रिय की प्राप्ति के लिए 18, बुरे ग्रहों के दोष की शान्ति के लिए 20, बन्धन से मुक्त होने के लिए 25 और मृत्यु के भय, व्यापक उपद्रव तथा देश को नाश आदि से बचाने के लिए और असाध्य वस्तुकी सिद्धि एवं लोकोत्तर लाभ के लिए आवश्यकतानुसार सौ, हजार, दस हजार और लाख पाठतक करने चाहिए। देवीव्रतों में 'कुमारीपूजन' परमावश्यक माना गया है। यदि सामर्थ्य हो तो नवरात्रपर्यन्त और न हो तो समाप्ति के दिन कुमारी के चरण धोकर उसकी गन्ध-पुष्पादि से पूजा करके मिष्टान्न भोजन कराना चाहिए। एक कन्या के पूजन से ऐश्वर्य की; दो से भोग और मोक्ष की; तीन से धर्म, अर्थ, काम की; चार से राज्यपद की; पाँच से विद्या की; छः से षट्कर्मसिद्धिकी; सात से राज्य की; आठ से सम्पदा की और नौ से पृथ्वी के प्रभुत्व की प्राप्ति होती है। दो वर्ष की लड़की कुमारी, तीन की त्रिमूर्तिनी, चार की कल्याणी, पाँच की रोहिणी, छःकी काली, सातकी चण्डिका, आठकी शाम्भवी, नौकी दुर्गा और दसकी सुभद्रास्वरूप होती है। इससे अधिक उम्रकी कन्या को कुमारी पूजामें नहीं सम्मिलित करना चाहिए।" दुर्गापूजा में प्रतिपदा को केश के संस्कार करनेवाले द्रव्य - आँवला और सुगन्धित तैल आदि; द्वितीया को बाल बाँधने के लिए रेशमी डोरी; तृतीया को सिन्दूर और दर्पण; चतुर्थी को मधुपर्क, तिलक और नेत्रांजन; पंचमी को अंगराग और अलंकार तथा षष्ठी को फूल आदि समर्पण करें। सप्तमी को गृहमध्यपूजा, अष्टमी को उपवासपूर्वक पूजन, नवमी को महापूजा और कुमारीपूजा तथा दशमी को नीराजन और विसर्जन करें। इसी प्रकार राम-कृष्णादि के नवरात्र में स्तोत्रपाठ या लीलाप्रदर्शन आदि करें। यह उल्लेख दिग्दर्शनमात्र है, अतः विशेष बातें ग्रन्थान्तरों से जाननी चाहिए। इस प्रकार नौ दिनों तक नवरात्र करके दशमी को दशांश हवन, ब्राह्मण- भोजन और व्रतका विसर्जन करें।

4.8. **वटसावित्रीव्रत**- यह व्रत स्कन्द और भविष्योत्तर के अनुसार ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को और निर्णयामृतादि के अनुसार अमावस्या को किया जाता है। इस देश में प्रायःअमावस्या को ही होता है। संसार की सभी स्त्रियों में ऐसी कोई शायद ही हुई होगी, जो सावित्री के समान अपने अखण्ड पातिव्रत्य और दृढ प्रतिज्ञा के प्रभाव से यमद्वार पर गए हुए पति को सदेह लौटा लाई हो। अतः विधवा, सधवा, बालिका, वृद्धा, सपुत्रा, अपुत्रा सभी स्त्रियों को सावित्री का व्रत अवश्य करना चाहिए।

नारी वा विधवा वापि पुत्रीपुत्रविवर्जिता। सभर्तृका सपुत्रा वा कुर्याद् व्रतमिदं शुभम् ॥ (स्कन्दे धर्मवचनम्)

विधि यह है कि ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को प्रातः स्नानादि के पश्चात् '**मम वैधव्यादिसकलदोषपरिहारार्थं ब्रह्मसावित्रीप्रीत्यर्थं सत्यवत्सावित्रीप्रीत्यर्थं च वटसावित्रीव्रतमहं करिष्ये।**' यह संकल्प करके तीन दिन उपवास करें। यदि सामर्थ्य न हो तो त्रयोदशी को रात्रिभोजन, है। चतुर्दशी को अयाचित और अमावस्या को उपवास करके शुक्ल प्रतिपदा को समाप्त करें। अमावस्या को वटवृक्ष के समीप बैठकर बाँस के एक पात्र में सप्तधान्य भरकर उसे दो वस्त्रों से ढके और दूसरे पात्र में सुवर्ण की ब्रह्मसावित्री तथा सत्यसावित्री की मूर्ति स्थापित करके गन्धाक्षतादि से पूजन करें तत्पश्चात् वट को सूत लपेटकर उसका यथाविधि पूजन कर परिक्रमा करें। फिर '**अवैधव्यं च सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते । पुत्रान् पौत्रांश्च सौख्यं च गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**' इस श्लोकसे सावित्री को अर्घ्य दे और '**वट सिंचामि ते मूलं सलिलैरमृतोपमैः। यथा शाखाप्रशाखाभिर्वृद्धोऽसि त्वं महीतले। तथा पुत्रैश्च पौत्रैश्च सम्पन्नं कुरु मां सदा ॥**' इस श्लोक से वटवृक्ष की प्रार्थना करें। देशभेद और मतान्तर के अनुरोध से इसकी व्रतविधि में कोई-कोई उपचार भिन्न प्रकार से भी होते हैं। यहाँ उन सबका समावेश नहीं किया है।

सावित्री की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है- यह मद्रदेश के राजा अश्वपति की पुत्री थी। द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् से इसका विवाह हुआ था। विवाह के पहले नारदजी ने कहा था कि सत्यवान् सिर्फ सालभर जीवित रहेगा परन्तु दृढसंकल्प सावित्री ने अपने मन से अंगीकार किए हुए पति का परिवर्तन नहीं किया और एक वर्ष तक पातिव्रत्य धर्म में पूर्णतया तत्पर रहकर अंधे सास-ससुरकी और अल्पायु पति की प्रेम के साथ सेवा की। अन्त में वर्ष समाप्ति के दिन ज्येष्ठ शुक्ल 15 को सत्यवान् और सावित्री समिधा लाने वन में गए। वहाँ एक विषधर सर्प ने सत्यवान् को डसा तो वह बेहोश होकर गिर गया। उसी अवस्था में यमराज आएँ और सत्यवान् के सूक्ष्मशरीर को ले जाने लगे परन्तु उन्होंने सती सावित्री की प्रार्थना से

प्रसन्न होकर सत्यवान् को सजीव कर दिया और सावित्री को सौ पुत्र होने तथा राज्यच्युत अंधे सास-ससुर को राज्यसहित दृष्टि प्राप्त होने का वर दिया।

भविष्य और स्कन्दपुराण के अनुसार व्रतविधि- वटवृक्ष के समीप में जाकर और जल का आचमन लेकर सङ्कल्प करें- **"मासानां ज्येष्ठ- मासे कृष्णपक्षे... वारे... तिथौ मम भर्तुः पुत्राणां च आयुरारोग्यप्राप्तये जन्मजन्मनि अवैधव्य-प्राप्तये च सावित्री व्रतमहं करिष्ये"** - अर्थात् ज्येष्ठमास कृष्णपक्ष त्रयोदशी अमुक वार में मेरे पुत्र और पति की आरोग्यता के लिए एवं जन्म- जन्मान्तर में भी मैं विधवा न होऊँ, इसलिए सावित्री का व्रत कर रही हूँ। इस सङ्कल्प के पश्चात् निम्नलिखित श्लोकों से प्रार्थना करें -

वट-मूले स्थितो ब्रह्मा वट-मध्ये जनार्दनः ।
वटाग्रे तु शिवो देवो सावित्री वट संश्रिता ॥
वट सिञ्चामि ते मूलं सलिलैरमृतोपमैः ।
यथा शाखा प्रशाखाभिर्वृद्धोसि त्वं महीतले।।
नमो वटाय सावित्र्ये भ्रामयेच्च प्रदक्षिणम् ।
सावित्रीश्च वरं सम्यगेभिर्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥
एवं विधि बहिः कृत्वा सम्यग्वै गृहमागतः ।
हरिद्राचन्दनेनैव गृहमध्ये लिखेद्वटम् ॥

वटवृक्ष के मूल में ब्रह्मा, मध्य में जनार्दन, अग्रभाग में शिव और समग्र में सावित्री हैं। हे, वटवृक्ष ! मैं तुमको अमृत के सदृश जल से सीचती हूँ। भक्ति- पूर्वक एक सूत के डोरे को लगाते हुए वट की परिक्रमा और गन्ध, पुष्प तथा अक्षतों से पूजन करें तथा वट और सावित्री को नमस्कार कर प्रदक्षिणा करें। लेकिन ध्यान रहे कि पूजन मन्त्रों से करें। इस प्रकार से वहाँ वटवृक्ष का पूजन और घर पर आकर हल्दी तथा चन्दन से घर के दीवाल पर वटवृक्ष का प्रतीकात्मक चित्र बनाए ।" हस्त- लिखित वटकी सन्निधि में बैठकर पूजन करें एवं उपर्युक्त सङ्कल्प से प्रार्थना करें। इसके अनन्तर वट के सामने यह नियम करें,- "तीन रात्रि तक में लंघन करके चौथे दिन चन्द्रमा का अर्घ देकर तथा सावित्री का पूजन कर, यथाशक्ति मिष्ठान्न से ब्राह्मणों को भोजन कराकर, पुनः भोजन करूँगी; अतः हे सावित्री! तू मेरे इस नियम को निर्विघ्न समाप्त करना। इसके अनन्तर विशेष विधि से पूजन करना हो, तो व्रतराज, धर्मसिन्धु और निर्णयसिन्धु में उल्लखित पद्धति से करना चाहिए। वट तथा सावित्री का पूजन करने के बाद सिन्दूर,

कुमकुम और ताम्बूलादि से प्रतिदिन सुवासिनी स्त्री का भी पूजन करें। पूजा के उपरान्त व्रत की साङ्गता-सिद्ध्यर्थ ब्राह्मण को फल, वस्त्र और सौभाग्यप्रद द्रव्यों को घास के पात्र में रखकर दक्षिणा दें और प्रार्थना करें-

उपायनमिदं द्रव्यं व्रत-सम्पूर्णहेतवे ।

चाणकं द्विजवर्याय सहिरण्यं ददाम्यहम् ॥

"यह स्वर्णयुक्त उपायन द्रव्य वटसावित्री व्रत की समाप्ति के अर्थ ब्राह्मण को देती हूँ।"

स्कन्दपुराण की कथा -

सनत्कुमार ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, - "हे, देव! स्त्रियों के वैधव्य-दुःख- का नष्ट करनेवाले, सौभाग्य के देनेवाले और पुत्र पौत्रादि को देनेवाले वट- सावित्री व्रतको कृपाकर कहो ।" ईश्वर बोले, कि हे सनत्कुमार ! मद्र देश में परम-धार्मिक, वेदवेदाङ्ग का पारगामी और ज्ञानी एक अश्वपति नामक राजा था लेकिन पुत्र नहीं था। इस कारण दम्पती ने पुत्र के देनेवाली सरस्वती का जप किया। उस जप यज्ञ के प्रभाव से स्वयं सरस्वती ने शरीर धारण कर राजा और रानी को दर्शन दिया। जब दम्पती ने साक्षात् सरस्वती का दर्शन किया, तो प्रसन्न होकर राजा पृथ्वी पर गिर पडा। उस समय सन्तुष्ट होकर सरस्वती बोली, "राजन् ! वर माँगों राजा ने प्रार्थना की, कि आपकी कृपा से मुझको सभी प्रकार का आनन्द है, केवल एक पुत्र की कमी है। आशा है, कि अब वह पूर्ण हो जाएगी । सावित्री ने कहा, "राजन् ! तुम्हारे भाग्य में पुत्र तो नहीं है; परन्तु दोनों कुलों की कीर्ति-पताका को बढ़ाने वाली एक कन्या अवश्य प्राप्त करोंगे, लेकिन ध्यान रहे उसका नाम मेरे नाम पर रखना ।" यह कहकर सावित्री तो अंतर्धान हो गई एवं इधर मद्राधिपति भी प्रसन्न हो गया। कुछ काल के उपरान्त रानी के गर्भ से साक्षात् सावित्री का जन्म हुआ और नाम भी उसका सावित्री ही रखा गया। राजा और रानी के देखते ही देखते वह कन्या अल्पकाल में ही युवती हो गई। राजा उस अमानुषिक रूप को देखकर विचार करने लगा, कि यदि यह कन्या मानुषी हो तो, तो मैं अवश्य ही इसके लिए वर ढूंढता, परन्तु यह तो ठहरी, देवी ! मेरी सामर्थ्य नहीं, कि मैं इसके योग्य वर ढूंढ सकूं, यह विचार कर सावित्री से ही कहा, "बेटी! अब तुम विवाह के योग्य हो गई हो; अतः अपने योग्य वरको तुम स्वयं खोज करों । मैं तुम्हारे साथ अपने वृद्ध सचिव को भेजता हूँ ।

जब सावित्री वृद्ध सचिव के साथ वर को खोजने को गई हुई थी, तब एक दिन मद्राधिपति के स्थान पर अकस्मात् नारदजी आ गये। नारदजी के आने से महाराज को बड़ा भारी आनन्द हुआ और वह अपने भाग्य की सराहना करने लगा, इतने में ही वर को पसन्द करके कमलेक्षणा सावित्री भी आ गई और नारदजी को देखकर प्रणाम करने लगी। कन्या को देखकर नारदजी कहने लगे, - "राजन् ! सावित्री के लिए अभी तक वर ढूंढा अथवा नहीं ?" राजा बोला, कि वर के लिए मैने स्वयं सावित्री को ही भेजा था और वह वर को पसन्द करके इसी समय आई है। तब तो नारदजी ने सावित्री से ही पूछा, "बेटी ! तुमने किस वर से विवाह का निश्चय किया है ?" हाथ जोडकर अति नम्रता से सावित्री बोली, "द्युमत्सेन का राज्य रुक्मी ने हरण कर लिया है और वह अन्धा होकर रानी के सहित वन में रहता है। उसके इकलौते पुत्र सत्यवान को ही मैंने अपना पति स्वीकार किया है।" सावित्री के वचन को सुनकर अश्वपति से नारदजी बोले, - "राजन् ! आपकी कन्या ने बड़ा परिश्रम किया है।

सत्यवान् वास्तव में बड़ा गुणवान् और धर्मात्मा है। वह स्वयं सत्य बोलने वाला है और उसके माता पिता भी सत्य ही बोलते हैं। इसी कारण उसका नाम सत्यवान् रखा गया है। सत्यवान् को घोड़े बहुत प्यारे है। यहाँ तक कि वह मिट्टी के बने और चित्रलिखित घोड़ों से भी काम लेता है। इसी कारण सत्यवान् का दूसरा नाम चित्राश्व भी है। सत्यवान् रूपवान्, धनवान्, गुणवान् और सब शास्त्रों में विद्वान है। विशेष क्या कहूँ, उसके तुल्य संसार में दूसरा कोई मनुष्य नहीं है। जिस प्रकार रत्नाकर में रत्नों का कोश है, उसी प्रकार सत्यवान् में सद्गुणों का कोश है; परन्तु दुःख से कहना पडता है, कि उसमें' एक दोष भी बड़ा भारी है। अर्थात् वह एक वर्ष की समाप्ति पर मर जाएगा ।" "सत्यवान् अल्पायु है" यह सुनते ही अश्वपति के सब विचार बालु की भीत की तरह नष्ट हो गए और सावित्री से कहा, कि बेटी ! तुमको और वर ढूँढना चाहिए, क्षीणायु के साथ विवाह करना कदापि श्रेयस्कर नहीं। पिता के इस कथन को सुनकर सावित्री ने उत्तर दिया-

नान्यमिच्छाम्यहं तात ! मनसाऽपि वरं प्रभो ।
यो मया च वृतो भर्ता स मे नान्यो भविष्यति ॥
विचिन्त्य मनसा पूर्वं वाचा पश्चात्समुच्चयेत् ।
क्रियते च ततः पश्चात् शुभं हि यदि वाऽशुभम् ॥

तस्मात्पुमांसं मनसा कथ चान्यं वृणोम्यहम् ।।

सकृत् जल्पन्ति राजानः सकृत् जल्पन्ति पण्डिताः।

सकृत् कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥ ॥

पति मत्वा न मे बुद्धिर्विचलेत् न कथञ्चन ।

सगुणो निर्गुणां वापि मूर्खः पण्डित एव वा ॥

दीर्घायुरथवाऽल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा।

सकृद्वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ।।

"तात ! अब मैं अन्य पति की अभिलाषा नहीं करती। जिसको मैंने मन से स्वीकार कर लिया कोई भी संकल्प प्रथम मन में आता है चाहे वह शुभ है, मेरा पति वही होगा, अन्य नहीं। और फिर वाणी में। वाणी के पश्चात् करना ही शेष रहता है। हो, या अशुभ। इसलिए अब मैं दूसरे को कैसे वरण कर सकती हूँ, यह आप ही कहें? राजा एक बार ही कहता है, पंडितजन भी एक वार ही प्रतिज्ञा करते हैं जिसको आजीवन निर्वहन करते हैं। सगुण हो या निर्गुण, मूर्ख हो या पण्डित जिसको मैंने एकवार भर्त्ता कह दिया, फिर मेरी बुद्धि विचलित नहीं ऐसी परमात्मा से प्रार्थना है। चाहे वह दीर्घायु हो चाहे अल्पायु, मेरा वही पति है। अब मैं अन्य पुरुष को तो क्या परन्तु तैंतीस कोटि देवों के अधिपति इन्द्र को भी स्वीकार न करूँगी । सावित्री के इस दृढ निश्चय को देखकर नारदजी ने अश्वपति से कहा कि, अब आपको सावित्री का विवाह सत्यवान् के साथ ही कर देना चाहिए ।नारद जी अपने स्थान को चले गए और राजा अश्वपति विवाह के समस्त साहित्य और कन्या को साथ लेकर वृद्ध सचिव के सहित उसी वन में गया, जहाँ राज्यश्री से भ्रष्ट, अपनी रानी एवं राजकुमार के सहित एक वृक्ष के तले राजा द्युमत्सेन निवास करते थे। सावित्री के सहित अश्वपति ने महाराज द्युमत्सेन के चरणोंको छूकर अपना नाम बतलाया। द्युमत्सेन ने आगमन का कारण पूछा, तो अश्वपति बोले, "मेरी पुत्री सावित्री का विचार आपके पुत्र सत्यवान् के साथ पाणिग्रहण करने का है और साथ ही मेरी भी सम्मति है। इस कारण विवाहोचित सकल साहित्य को लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।" राजा द्युमत्सेन कुछ उदास से होकर बोले, - आप तो सम्प्रति राज्यासीन राजा हैं और मैं राज्यश्री से भ्रष्ट राजा हूँ। मैं तथा मेरी रानी दोनों अन्धे हैं, वनमें रहते हैं और सर्वथा निर्धन हैं। तुम्हारी कन्या वन के दुःखों को न जानकर ही ऐसा कहती है ।" अश्वपति बोले, "नाथ ! मेरी कन्या सावित्री ने ये सब बातें प्रथम ही विचार ली हैं और यह कहती है, कि जहाँ मेरे सास - श्वसुर

एवं पतिदेव निवास करेंगे, वह स्थान चाहे और किसी के लिए वन हो परन्तु मेरे लिए तो वह वैकुंठधाम ही होगा।" इस प्रकार के दृढ प्रण को सुनकर द्युमत्सेन ने भी उस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया। यथाशास्त्र सावित्री का विवाह करके महाराज अश्वपति तो अपनी राजधानी में आ गये और उधर सावित्री ने सत्यवान् को पति पाकर बड़ी भारी सेवा की, तथा दोनों परस्पर इन्द्र एवं इन्द्राणी- की तरह विहार करने लगें ।

नारद जी ने जो कहा था, सावित्री उससे बेखबर नहीं थी, किन्तु उनके कथनानुसार एक- एक दिन गिन रही थी। जब पति के मरण का समय समीप आते देखा, तो तीन दिन प्रथम से उपोषण किया और तीसरे ही दिन पितृ- देवों का पूजन किया। यही दिन नारदजी का बतलाया हुआ था। नित्य के अनुसार प्रातःकाल हाथ में कुल्हाड़ी और टोकरी को लेकर वन को जाने के लिए जब सत्यवान् तैयार हो गया, तब हाथ जोड़कर सावित्री ने प्रार्थना की, - "भगवन् ! आपकी सेवा में रहते रहते मुझको एक वर्ष हो गया, परन्तु मैंने इस समीपवर्ती वन को कभी नहीं देखा। आज तो आपके साथ में भी अवश्य ही चलूँगी ।" यह सुनकर सत्यवान् बोला, "प्रिये ! तुम जानती ही हो, कि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। यदि मेरे साथ चलना है, तो वृद्ध माता पिता से आज्ञा ले लो।" सावित्री ने अति नम्रभाव से सास एवं श्वसुर के पास जाकर आज्ञा ली और अपने पति के साथ वन में चली गई। वन में जाकर सत्यवान् ने प्रथम तो फलों को तोड़ा और फिर लकड़ियों को काटने के लिए एक वृक्ष पर चढ़ा। वृक्ष के ऊपर ही सत्यवान् के मस्तक में वेदना हो गई, जिससे नीचे उतर कर और सावित्री के पैर पर सिर को रखकर लेट गया। थोड़ी देर के बाद सावित्री ने देखा, कि पाश को हाथ में लेकर यमराज अनेक दूतों के सहित खड़ा है। प्रथम तो यमराज ने सावित्री को ईश्वरीय नियम यथावत् कहकर सुनाया और फिर अंगुष्ठ मात्र जीव को लेकर दक्षिण दिशा को प्रयाण किया। यमराज के पीछे पीछे जब सावित्री बहुत दूर वन में आगई, तब यमराज ने कहा, "पतिपरायणे ! जहाँ तक मनुष्य मनुष्य का साथ दे सकता है, वहाँ तक तुमने अपने पति का साथ दिया। अब मनुष्य के कर्त्तव्य से आगे की बात है; अतः तुमको पोछे लौट जाना चाहिए ।" यह सुनकर सावित्री बोली -

यत्र मे नीयते भर्त्ता स्वयं वा यत्र गच्छति ।

मयापि तत्र गन्तव्यं एष धर्मः सनातनः ॥

"यमराज ! जहाँ मेरा पति ले जाया जाय या स्वयं जाय, मुझको भी वहाँ पर ही जाना चाहिए यह सनातन धर्म है।" तपसे, गुरु-वृत्ति से, पति- स्नेह से, व्रत से और आपके अनुग्रह से मेरी गति को रोकने वाला कोई नहीं है। सावित्री के धर्ममय उपदेश को श्रवणकर यमराज बहुत प्रसन्न होकर कहने लगे,--

निवर्त्त तुष्टोऽस्मि तवाऽनया गिरा स्वराक्षर-व्यंजन-हेतु-युक्तया ।

वरं वृणीष्वेह विनास्य जीवितं ददामि ते सर्वमनिन्दिते वरम् ॥

"हे सावित्री ! स्वर, अक्षर और व्यंजन आदि से ठीक तथा हेतु सहित तेरी इस वाणी से में बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। इस कारण सत्यवान् के जीवन को छोड़कर चाहे, सो वर माँग ले। जो तू माँगेगी, वह दूँगा ।" जीवन को छोड़कर चाहे, सो वर माँग ले। जो तू माँगेगी, वह दूँगा ।" यमराज के वाक्यों को श्रवण कर सावित्री ने विचार किया, संसार में धर्म- परायण स्त्री का यही कर्त्तव्य हो सकता है, कि प्रथम तो वह अपने श्वशुर कुल का, फिर पिता के कुल का और तदुपरान्त अपना हित साधने में तत्पर हो, इसी परम तथ्य को दृष्टि में रखकर सावित्री ने कहा, -

च्युत-स्वराज्याद्वनवासमाश्रितो अलब्ध-चक्षुःश्वशुरो ममाश्रमे ।

सलब्ध-चक्षुर्बलवान्भवेन्नुपस्तवप्रसादाज्ज्वलनार्क-संभव ! ॥

"यमराज! अपने राज्य से भ्रष्ट होकर एवं दोनों आंखों से अन्धे होकर मेरे श्वशुर वनाश्रम में रहते हैं; अतः वे आपकी कृपा से सचक्षु हो जाए यह वरदान दें ।" इसपर यमराज सावित्री से कहते हैं, -

ददामि ते सर्वमनिन्दिते वरं यथा त्वयोक्तं भविता च तत्तथा ।

तवाध्वनोग्लानिमिवोपलब्धये निवर्स गच्छस्व न ते श्रमो भवेत् ॥

"अनिन्दिते ! तुझको सब दिया जो तूने कहा है, वह उसी प्रकार होगा; परन्तु तुझको मार्ग का जो कष्ट है, उससे मुझको ग्लानि होती है। अतः तू यहाँ ही ठहर, जिससे श्रम न हो।" यमराज के इस कृपापूर्ण आशय को समझ- कर सावित्री कहने लगी, "भगवन्! जहाँ मेरे पति-देव जाते हों, वहाँ और उनके साथ चलने में मुझको परिश्रम नहीं होता, प्रत्युत यही मेरा कर्त्तव्य है और तदुपरान्त आप धर्मराज एवं सज्जन हैं, अतः ऐसे सत्पुरुषों का समागम भी थोड़े पुण्यका फल नहीं है। इसलिए मेरा चलना ही श्रेष्ठ है।" सावित्री के धर्म तथा श्रद्धायुक्त वचनों को सुनकर यमराज ने फिर कहा, "सावित्री! तेरे धार्मिक तथा न्याययुक्त वचनों को सुनकर चित्त में प्रसन्नता हुई है; अतः यदि तुम चाहो, तो एक और भी वरदान माँग सकती हो।" यह सुनकर सावित्री फिर कहती है-

इतं पुरा मे श्वशुरस्य धीमतः स्वमेव राज्यं स लभेत पार्थिवः ।

न च स्वधर्मं प्रजहीत में गुरुरितीयमेवं वरयामि ते वरम् ॥

"बुद्धिमान् द्युमत्सेन मेरे श्वशुरका राज्य हरण हो गया है, वह उनको पुनः प्राप्त हो जाए और उनकी सदैव धर्म में प्रीति रहे यही प्रार्थना है।" यमराज बोले, कि जो तुमने कहा है, वह अवश्य होगा; परन्तु अब तुम आगे न चलकर यहाँ से अपने नगर को चले जाओ। यह सुनकर सावित्री ने आर्त्तस्वर से कहा, - प्राणीमात्र में अद्रोह तथा मन, वाणी और कर्म से सब पर अनुग्रह - यह सज्जनपुरुषों का वेद- विहित धर्म है, फिर क्यों आप अद्रोह और अनुग्रह को भूलकर मुझको क्यों पीछे लौटाते हो ? यह मेरी समझ से सज्जनों का धर्म नहीं है।

सावित्री के इस पाण्डित्य-पूर्ण भाषण को सुनकर और अत्यन्त प्रसन्न होकर यमराज ने तीसरा वर देने की इच्छा हुई। उस समय सावित्री ने पितृ कुल की भलाई को लक्ष्य में रखकर यह कहा, - **ममानपत्यः**

पृथिवीपतिः पिता भवेत्पितुः पुत्रशतं च औरसं ।

कुलस्य सन्तान करस्य तद्भवे तृतीयमेवं वरयामि ते वरम् ॥

"धर्मराज! अनपत्य मेरे पिता को सौ पुत्र औरस मिलें, यही मेरी तीसरी कामना है।" यमराज ने "तथास्तु" कहकर कहा, कि सावित्री ! तुम जो इस कंटकाकीर्ण मार्ग में बहुत दूर तक आ गई हो, इसका मुझको बहुत दुःख हैं; अतः पीछे लौट जाओ। सावित्री ने कहा, नाथ! दूर और समीप ये दोनों बातें अपेक्षाकृत हैं। जहाँ मेरे पतिदेव हों, वहाँ ही मेरा घर है, फिर मैं दूर किससे हूँ। आप सन्त हैं। सन्त न कभी दुःखी होते हैं और न सुखी, ये तो अपने सत्य के बल से सूर्य को जोतते हैं, तपोबल से पृथ्वी को धारण करते हैं और शरीर को क्षणभंगुर समझकर सदैव सब प्राणियों में दया ही करते हैं आश्चर्य है, कि आप अपने धर्म को भूलकर मुझ पर दया नहीं करते।" सावित्री-

की युक्ति प्रतियुक्तियों ने यमराज के अन्तःकरण में एक अद्भुत भाव उत्पन्न कर दिया और उसी भाव से भाषित होकर यमराज फिर भी कहने लगे, -

यथा यथा भाषसि धर्म-संहितं मनोऽनुकूलं सुपदं महार्थवत् ।

तथा तथा मे त्वयि भक्तिरुत्तमा वरं वृणीष्वाप्रतिमं पतिव्रते ! ॥

"पतिव्रते ! तुम ज्यों ज्यों मनोऽनुकूल, धर्मयुक्त, अच्छे पर्वों से अलंकृत और बड़े अर्थ देनेवाला भाषण करती हो; त्यो त्यों मुझे प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है, अतः सत्यवान् के जीवन को छोड़कर एक और भी वरदान मांग सकती हो।"

श्वशुर कुल और पितृकुल की भलाई हो आने पर अब अपनी ही भलाई शेष थी; किन्तु एक पति परायण स्त्री को अपने पति की आयुवृद्धि के अतिरिक्त और क्या मांगने की आवश्यकता है। पुनः सावित्री ने इस प्रकार वरदान की भूमिका प्रस्तुत की।

न कामये भर्तृविना कृतं सुखं न कामये भर्तृविना कृतां दिवम् ।

न कामये भर्तृविना गतां धियं न भतृहीना व्यवसामि जीवितम् ॥

अर्थात् - मुझको पति के विना न तो सुख की इच्छा है, न स्वर्ग-लोक की, गत वैभव की और न विना पति के इस तुच्छ जीवन को ही रखना चाहती हूँ यद्यपि आपकी आज्ञा का उल्लंघन दोष समझकर एक वरदान मांगती हूँ-

ममात्मजं सत्यवतस्तथौरसं भवेदुभाभ्यामिह यत्कुलोद्वहम्।।

शतं सुतानां बलिनां महात्मनामिमं चतुर्थं वरयामि ते वरम् ॥

सत्यवान् से मेरे बलवान् सौ पुत्र हों, परन्तु किसी वरदान आदि लेकर सत्यवान् के वीर्य से औरस ही हो।" इस वरदान को देते हुए यमराज ने सत्यवान् को अपनी पाश से मुक्त करके सावित्री से कहा, - "सत्यवान् से आपके अवश्य ही औरस सौ पुत्र होंगे और तुम दोनों चार सौ वर्ष तक पृथिवी पर राज्य करके वैकुण्ठलोक में आएँगे। "

इतना कहकर यमराज तो अन्तर्धान हो गये और जिस वटवृक्ष के नीचे सत्यवान् निस्तेज शरीर पड़ा था, उसमें जीव का सञ्चार होते ही सत्यवान् उठा। सावित्री ने समस्त वृत्तान्त सुनाया और दोनों वहाँ से उठकर आश्रम की ओर चल दिए। इधर सत्यवान् के वृद्ध माता-पिता पुत्र और पुत्रवधु के वियोग से हाहाकार कर रहे थे, कि देवयोग से उन दोनों की आँखें खुल गई- इतने में सत्यवान् और सावित्री भी पहुँच गए। समस्त देश में सावित्री के अनुपम व्रत की वार्ता फैल गई और राजधानी के लोगों ने महाराज द्युमत्सेन को ले आकर राज्यसिंहासन पर बिठा दिया। राजा अश्वपति को भी वरदान के अनुसार 100 पुत्रों की प्राप्ति हो गई। सावित्री और सत्यवान् ने शतपुत्र युक्त होकर चार सौ वर्ष तक राज्य किया और

पुनः बैकुण्ठ को चले गए। हे सनत्कुमार ! इसी वटसावित्री व्रत के कारण सत्यवान् फिर जीवित हो गया; अतः प्रत्येक स्त्री को यह वृत अवश्य करना चाहिए।

व्रत विधि -

नियमित रीति से सालभर तक एक भुक्त रहे और ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी से उपवास रखकर ज्येष्ठशुक्ल प्रतिपदा को उद्यापन करें। चौथे दिन चन्द्रमा को अर्घ्य देना, सुवासिनी तथा सावित्री का गन्ध-पुष्प आदि से पूजन करना एवं यथायोग्य पति-पत्नी के जोड़ों को भोजन कराना इत्यादि कार्य करके पुनः स्वयं भी भोजन करें। उन बारह मासों में एक-भुक्त रहने का विधान है, उनमें प्रतिदिन जल से वट को सींचने का भी विधान है।

इसके अतिरिक्त उन ही चार दिनों में करने योग्य और भी कार्य लिखे हैं, "यथाशक्ति बांस, तथा मिट्टी के पात्र बनवाकर ओर उनमें सात प्रकार के धान्यों को भरकर एवं वस्त्र से ढांककर ब्राह्मणों को देने चाहिए। एक पात्र- पर ब्रह्माके सहित देवी सावित्री की और दूसरे पर सत्यवान् सहित सावित्री की रजतमयी मूर्ति बनवाकर रखें। एक बांस नई टोकरी तथा चान्दी का कुल्हाडी भी रखें। सामयिक फलों का दान करना, हल्दी से रंगे हुए कण्ठ- सूत्रों को देकर सुवासिनी स्त्रियों का पूजन करें और प्रतिदिन सावित्री की, सती स्त्रियों की एवं पुराणों की कथा को श्रवण करें।

चतुर्थ अर्थात् शुक्ल प्रतिप्रदा के दिन आचार्य तथा उनकी स्त्री का पूजन करना चाहिए। सावित्री ने भी कहा है, "जो स्त्री मेरे इस व्रत को करेगी वह पति के सहित सदैव आनन्द प्राप्त करेगी। इस मेरे व्रत में गौरी, प्रमुग्धा, वृद्धा, अपुत्रा, सभर्तृका और सपुत्रा चाहे, जैसी स्त्री हो, सबका अधिकार है।" चौथे दिन उद्यापन किया जाता है।

इकाईः 5. उपनिषदों का सामान्य परिचय

उपनिषद् - 'उप' और 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'षद्लृ विशरण-गत्यवसादनेषु' धातु में क्विप् प्रत्यय लगाने से उपनिषद् शब्द बना है। उपनिषद् शब्द का अर्थ है गुरु के समीप (उप + नि) जाना (षद्) अर्थात् ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु समीप जाना। वेदों का अन्तिम भाग अथवा वेदों का सार उपनिषद् है।

मुक्तिकोपनिषद् में 108 उपनिषदों का वर्णन है लेकिन प्रमुख उपनिषद् 11 हैं-

ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डूक्यतित्तिरिः।

ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा॥(मुक्तिकोपनिषद्- 1.3.0)

5.1. **ईशावास्योपनिषद्**- यजुर्वेदीय उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद के 19 उपनिषदों में से प्रमुख उपनिषद् है, इसको 'संहितोपनिषद्' भी कहा जाता है। इस में उपनिषद् में 18 मन्त्र हैं जो शुक्ल यजुर्वेद का 40वाँ अध्याय है, इसमें ब्रह्मतत्त्व का वर्णन, परा - अपरा विद्या वर्णन ब्रह्मा प्रार्थना वर्णन, ब्रह्म ज्ञान का वर्णन, आत्म ज्ञान का वर्णन, तात्पर्य ज्ञान का वर्णन आदि का निरूपण किया गया है।

ॐ ईशा वास्यमिदम् सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।1।।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयम् सह।

अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥11॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥15॥

5.2. **केनोपनिषद्**- सामवेदीय उपनिषद् हैं। यह जैमिनीय शाखा का उपनिषद् है। जैमिनीय तलवकार ब्राह्मण के नौवें अध्याय को ही केनोपनिषद् के नाम से जाना जाता है। इसका प्रारम्भिक मन्त्र 'केनेषितं पतति' है, अतः इसका नाम केनोपनिषद् पड़ा। केनोपनिषद् में चार खण्ड जो कुल 34 मन्त्रों में निहित हैं। प्रथम खण्ड में

उपास्य ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म का अन्तर स्पष्ट किया गया है। दूसरे खण्ड में ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन है। तीसरे और चौथे खण्ड में यक्ष का उपाख्यान है।

5.3. **कठोपनिषद्**- कृष्ण यजुर्वेदीय उपनिषद् हैं, इसमें में दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में तीन वल्ली और 119 श्लोक हैं। प्रथम अध्याय की द्वितीय वल्ली में श्रेयस् और प्रेयस् का वर्णन है।

प्रथम वर- संयम तथा पिता परितोष-

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो ।

त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥ 10॥

है मृत्यो ! जिससे मेरे पिता वाजश्रवस मेरे प्रति शान्तसङ्कल्प और क्रोधरहित हों तया आपके भेजने पर मुझे पहचानकर बातचीत करें, मैं आप के दिये हुए तीन वरों में से पहला वर माँगता हूँ।

द्वितीय वरस्वर्गसाधनभूत-

अग्निविद्या त्वमग्निꣳस्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वꣳश्रद्दधानाय मह्यम्।

स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ॥13॥

हे मृत्यो ! आप स्वर्ग के साधनभूत अग्नि को जानते हैं, अतः मुझ श्रद्धालु के प्रति उसका वर्णन कीजिए, जिसके द्वारा स्वर्गको प्राप्त हुए पुरुष अमृतत्व प्राप्त करते हैं। दूसरे वर में यही माँगता हूँ।

तृतीय वर- आत्मा का रहस्य

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।

एतद्विद्या मनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥20॥

मरे हुए मनुष्य के विषय मे जो यह सन्देह है कि कोई तो कहते हैं 'रहता है' और कोई कहते हैं 'नहीं रहता'; आपसे शिक्षित हुआ में इसे जान सकूँ। मेरे वरों में यह तीसरा वर है।

श्रेय और प्रेय-

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषꣳ सिनीतः।

तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥21 ॥

श्रेय (विद्या) और है तथा प्रेय (अविद्या) और है। वे दोनों विभिन्न प्रयोजन के लिए होते हुए ही मानव को बाँधते हैं। इन दोनों में से श्रेय का ग्रहण करनेवाले का शुभ होता है एवं जो प्रेय का ग्रहण करता है, वह पुरुषार्थसे पतित हो जाता है।

नचिकेता ने यम से तीन वर मांगे थे-

(1) पिता शान्तसङ्कल्प हों,

(2) अग्नि विद्या का वर्णन

(3) आत्मतत्त्व का ज्ञान

इस प्रकार वरों का यम के द्वारा समाधान भी है।

5.4. **प्रश्नोपनिषद्**–प्रश्नोपनिषद् में सुकेशादि ने महर्षि पिप्पलाद से छह प्रश्न किये उनका वर्णन हैं-

प्रथम प्रश्न - रयि और प्राण की उत्पत्ति, अन्न का प्रजापतित्व

द्वितीय प्रश्न - प्राण का सर्वाश्रयत्व, प्राण की स्तुति

तृतीय प्रश्न - पञ्च प्राणों की स्थिति, प्राण की उत्पत्ति

चतुर्थ प्रश्न - इन्द्रियों का लय स्थान, स्वप्न दर्शन का विवरण, सुषुप्ति निरूपण

पञ्चम प्रश्न - ओंकारोपासना के महत्त्व का वर्णन

षष्ठ प्रश्न - सृष्टिक्रम, नदी के दृष्टान्त से सम्पूर्ण जगत का पुरुषाश्रयत्व प्रतिपादन।

उपर्युक्त प्रश्नों में द्वितीय से षष्ठ पर्यन्त क्रमशः भार्गव, कौसल्य, गार्ग्य, सत्यकाम एवं सुकेशा ऋषि प्रश्न कर्ता है एवं पैप्पलाद ऋषि समाधान कर्ता है।

5.5. **मुण्डकोपनिषद्-** अथर्ववेदीय उपनिषद् है। यह तीन मुण्डकों (अध्याय) में विभक्त है एवं प्रत्येक में मुण्डक दो-दो खण्ड हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण मुण्डकोपनिषद् में 6

खण्ड हैं, इसका महावाक्य **'सत्यमेव जयते** राष्ट्रीय चिह्न में अंकित है और प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार से हैं-

- **प्रथम मुण्डक**
- **प्रथम खण्ड**
- आचार्य परम्परा
- सृष्टि क्रम
- परा-अपरा विद्या का स्वरूप
- अक्षरब्रह्म का विश्वकारणत्व
- **द्वितीय खण्ड**
- अग्निहोत्र का वर्णन
- विधिहीन कर्म का कुत्सित फल
- कर्म निरूपण
- अग्नि की सात जिह्वा का वर्णन
- **द्वितीय मुण्डक**
- **प्रथम खण्ड**
- अक्षर ब्रह्म से जगदुत्पत्ति कथा
- कर्म और उनेक साधनों की प्रसूति
- पर्वत नदी और औषधी आदि का ब्रह्म जन्यत्व
- इन्द्रिय विषय और इन्द्रिय स्थानादि ब्रह्मजनित
- **द्वितीय खण्ड**
- ब्रह्मवेधन की विधि तथा वेधन हेतु प्रयुक्त उपकरणों का स्पष्टीकरण
- आत्मसाक्षात्कार तथा ओंकाररूप से ब्रह्मचिन्तन की विधि
- अपर ब्रह्म का वर्णन तथा चिन्तन प्रकार
- ब्रह्म का सर्वप्रकाशकत्व एवं सर्वव्याकत्व रूप में वर्णन
- **तृतीय मुण्डक**
- **प्रथम खण्ड**

- सत्य की महिमा
- आत्मदर्शन के साधन
- परमपद का स्वरूप
- चित्तशुद्धि द्वारा आत्मसाक्षात्कार
- **द्वितीय खण्ड**
- आत्मवेत्ता की पूजा का फल
- आत्मदर्शन के प्रधान तथा अन्य साधन
- मोक्ष का स्वरूप
- विद्या प्रदान की विधि

5.6. **माण्डूक्योपनिषद्**-अथर्ववेदीय उपनिषद् हैं, इसमें चार प्रकरण हैं- आगम, वैतथ्य, अद्वैत एवं अलातशान्ति। आगम प्रकरण में 29 मन्त्र, वैतथ्य प्रकरण में 38 मन्त्र, अद्वैत प्रकरण में 48 एवं अलातशान्ति प्रकरण में 100 मन्त्र हैं, इस प्रकार समग्र माण्डूक्योपनिषद् में 215 मन्त्र हैं। अयमात्मा ब्रह्म, सोऽयमात्मा चतुष्पाद्।

प्रकरणों के प्रमुख विषय –

आगम प्रकरण -

- ओंकार वाच्य ब्रह्म की सर्वात्मकता
- आत्मा, प्राण तथा तुरीय का विवेचन
- विश्व और तैजस से तुरीय का भेद
- समस्त और व्यस्त ओंकारोपासना

वैतथ्यप्रकरण –

- पदार्थ कल्पना की विधि
- परमार्थ क्या है?
- आन्तरिक बाह्य पदार्थों का ज्ञान
- तत्त्वदर्शी का आचरण

अद्वैतप्रकरण –

- जीव के उत्पत्ति लय का दृष्टान्त
- व्यावहारिक जीव भेद
- ब्रह्म का स्वरूप
- शान्त वृत्ति का स्वरूप
- मनोनिग्रह में विघ्न तथा विघ्नों का निवारणोपाय

अलातशान्तिप्रकरण

- विविध दार्शनिक मतों का प्रतिपादन तथा खण्डन
- विज्ञानवाद का खण्डन
- आत्मा की अनिर्वचनीयता
- द्वैताभाव से जन्माभाव

5.7. **तैत्तिरीयोपनिषद्**- तैत्तिरीयोपनिषद कृष्ण यजुर्वेदीय उपनिषद् है। यह शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली एवं भृगुवल्ली इन तीन खंडों में उपलब्ध होता है, इसमें 53. मंत्र और 40 अनुवाक हैं। भूः भुवः स्वः महः आदि अधिलोकों की व्याख्या, अन्नमय आदि कोशों का विवरण, सृष्टि की उत्पत्ति और ब्रह्मज्ञान का निरूपण है। सत्यं वद, धर्म चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः, सत्यान्न प्रमदितव्यम्, मातृदेवो भव, पितृदेवो भवः आचार्यदेवो भव, अत्तिथि देवो भव, धर्मान्न प्रमदितव्यम्, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

5.8. **ऐतरेयोपनिषद्**- ऋग्वेदीय उपनिषद् हैं। ऐतरेय आरण्यक में द्वितीय आरण्यक भाग के 4 से 6अध्यायों का नाम ऐतरेय उपनिषद् है, इसमें कुल 3अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में कुल तीन खण्ड, द्वितीय एवं तृतीय अध्याय में एक-एक खण्ड है। ब्रह्मा की उत्पत्ति और पुरुष के तीनों जन्मों का विवेचन इसमें किया गया है। जन्म, जीवन, मरण का वर्णन द्वितीय अध्याय में है। आत्मा के स्वरूप का वर्णन तृतीय अध्याय में है। "**प्रज्ञानं ब्रह्म**" ऐतरेय उपनिषद् का

महावाक्य है।

इकाईः 6. मन्दिर परिसर का सौन्दर्यीकरण

6.1. मन्दिर के आसपास फूल एवं फल वाले पौधें लगाना-

फूल एवं फल वाले पौधे की खेती को उनके उगाने के उद्देश्य, विधि, प्रबंध व्यवस्था एवं व्यावसायिक स्तर के आधार पर विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है। लघु वाटिका में फूल एवं फल के उत्पादन का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है इसमें फूल एवं फल उत्पादन का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि मन्दिर में उपयोग हेतु ताजे फूल एवं फल वर्ष भर मिलते रहे। इस प्रकार के फूल एवं फल उत्पादन में मुख्य ध्येय आर्थिक लाभ न होकर पूजन हेतु शुद्ध एवं ताजे फूल एवं फल उपलब्ध कराना होता है। फूल एवं फल वाले पौधे का चयन मन्दिर की आवश्यकतानुसार किया जाता है। मन्दिर परिसर के चारों ओर खाली पड़ी भूमि में छोटी-छोटी क्यारियाँ बना ली जाती हैं। क्यारियों में फसल चक्र अपनाए जाते हैं तथा फल-फूल का उत्पादन किया जाता है।

6.2. लघुवाटिका का निर्माण करना

लघु वाटिका के लिए उचित स्थान

- लघु वाटिका का स्थान मन्दिर के निकट होना चाहिए।
- मन्दिर के आगे या आसपास व पूर्णतया खुला एवं सूर्य के प्रकाश की पर्याप्त पहुँच वाले स्थान का चयन करना चाहिए।
- लघु वाटिका के लिए दोमट मिट्टी जिसमें जीवांशों की अच्छी मात्रा हो, उपयुक्त रहती है।
- इसके अतिरिक्त फूल एवं फलों वाले पौधों को उगाने के लिए पर्याप्त सिंचाई देना भी आवश्यक होता है, अतः सिंचाई के लिए जल की उपलब्धता भी होनी चाहिए।

मन्दिर परिसर में लगाये गये वृक्षों का दिशा निर्धारण -

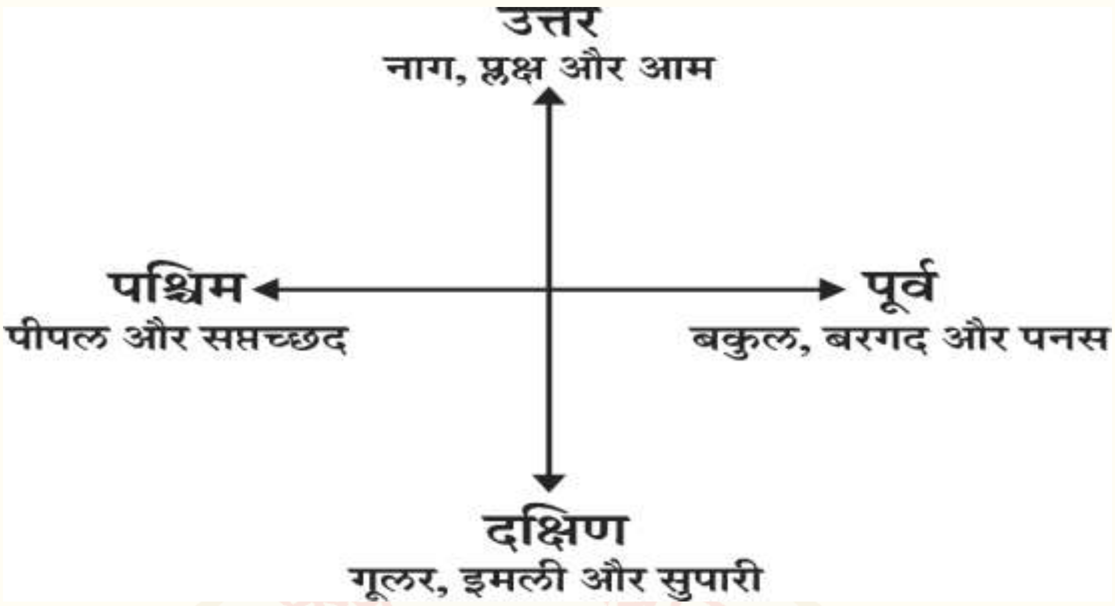

पूर्वस्यां वकुलो वटश्च शुभदोऽवाच्यां तथोदुम्बर-

श्चिञ्चा चाम्बुपतौ तु पिप्पलतरुः सप्तच्छदोऽपि स्मृतः ।

कौबेर्यां दिशि नागसञ्ज्ञिततरुः प्लक्षश्च संशोभनाः

प्राच्यादौ तु विशेषतः पनसपूगौ केरचूतौ क्रमात् ।। (मनुष्यालयचन्द्रिका 1.22)

मन्दिर की पूर्व दिशा में बकुल और वट का रोपण शुभ होता है। दक्षिण दिशा में उदुम्बर अथवा गूलर या इमली का पेड़ लगाना शुभ माना जाता है। मन्दिर की पश्चिम दिशा में पीपल और सप्तच्छद (छितिवन) के वृक्ष शुभ माने गए हैं। उत्तर दिशा में नाग संज्ञक वृक्ष और प्लक्ष या पाकड़ पारस पीपल शुभ होते हैं और पूर्व दिशा में विशेष रूप से पनस (कटहल) व पुग अथवा सुपारी, नारियल और आम शुभ होते हैं।

लघु वाटिका में क्या-क्या उगाएँ

यदि मन्दिर के आसपास पास खुला स्थान हो तो उगाने वाले फूल एवं फलों की कोई सीमा नहीं है। फल वाले पेड़ जैसे पपीता, नींबू व अमरूद, आम, अनार, केला, संतरा, सीताफल, बिल्वफल, कपित्थफल, अनानास, चीकू, शहतूत आदि भी उगाए जा सकते हैं। फूल वाले पौधे गुड़हल, अर्क, पारिजात, धतूरा उगाए जा सकते हैं, यदि पर्याप्त खुला स्थान नहीं हैं तो आप सीमित तरीके से लघु-वाटिका में गेंदा, गुलाब, तुलसी, जूही, चम्पा, चमेली, दूर्वा आदि लगा सकते हैं ।

लघु वाटिका लगाने के लिए भूमि की तैयारी

जिस स्थान पर लघु वाटिका लगानी हो वहाँ की मिट्टी में जल एवं वायु का प्रवाह अच्छा होना चाहिए। इसलिए लघु वाटिका लगाने से पहले भूमि को तैयार कर लेना महत्वपूर्ण है। मिट्टी जितनी भुरभुरी, कार्बनिक खाद एवं जीवांश तत्वों से भरपूर होगी, पैदावार भी उतनी ही अच्छी मिलेगी। यदि बड़े क्षेत्रफल में फल एवं फूल लगानी हो तो इसके लिए एक जुताई डिस्क हैरो तथा 2-3 जुताई मिट्टी पलटने वाले हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। इसके बाद अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद 1-1.5 टन प्रति हैक्टेयर के हिसाब से मिट्टी में अच्छी तरह मिलानी चाहिए। मन्दिर परिसर में थोड़े स्थान में फल एवं फूल उगाने के लिए फावड़ा का उपयोग कर मिट्टी को अच्छी तरह से भुरभुरा कर क्यारियाँ बना लेनी चाहिए तथा गोबर की खाद को क्यारियों में डाल कर मिश्रित कर लेना चाहिए। गमले तैयार करते समय भी खुरपी से मिट्टी अच्छी तरह भुरभुरी कर तथा गोबर की खाद मिलाकर गमले तैयार कर लेने चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

खाद एवं उर्वरक का अच्छी पैदावार प्राप्त करने में अत्यधिक महत्व है। इसके लिए आवश्यक है कि मिट्टी में कार्बनिक खाद का प्रयोग हो। खाद मिट्टी की दशा सुधारती है व पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति भी करती है। इसके लिए लघु - वाटिका के एक कोने में कम्पोस्ट खाद का निर्माण भी किया जा सकता है।

कम्पोस्ट बनाने की विधि

मन्दिर का निर्माल्य, सूखे पत्ते आदि पदार्थों के बैक्टीरिया एवं फँजाई द्वारा विघटन / सड़न से बना हुआ पदार्थ कम्पोस्ट कहलाता है। लघु-वाटिका के क्षेत्रफल के आधार पर एक 6 फुट लम्बा, 3 फुट चौड़ा एवं 3 फुट गहरा गड्ढा खोद लें।

ऐसा करने से पोषक तत्वों के घुलकर बह जाने की क्षति को कम किया जा सकता है। गड्ढे को फलों के छिलकों, सूखे पत्तों, निर्माल्य से भर देवें। 25 से 50 ग्राम यूरिया फैला दें और पानी का सतह पर छिड़काव कर दें। यदि गोबर आसानी से मिल जाए तो पौधों के अवशिष्ट के ऊपर 2.5 से 5.0 से.

मी. मोटी गोबर की परत बिछा दें। कम्पोस्ट गड्ढे में यूरिया मिलाने से दो उद्देश्य पूरे होते हैं। पहला ये जीवाणुओं के लिए ऊर्जा का कार्य करता है दूसरा यह जैवीय पदार्थों को जल्दी सड़ाकर खाद में सिर्फ नाइट्रोजन ही नहीं बल्कि फासफोरस और गंधक जैसे तत्वों की वृद्धि करता है। खाद को 2 महीने तक सड़ने देना चाहिए। लघु -वाटिका मे इस प्रकार 2-3 गड्ढे बना लेना चाहिए ताकि उनका बारी-बारी से प्रयोग किया जा सके।

पारम्परिक गोबर की खाद

कम्पोस्ट खाद

लघु वाटिका में क्यारी बनाकर फल एवं फूल उगाना

- फावड़े या खुरपी से 10-15 से.मी. मिट्टी खोद लें। अच्छी तरह सड़ी हुई खाद मिला दें। क्यारी को समतल बनायें और उसके चारों ओर बांध बना दें।
- उन्नत किस्म के पौधों का प्रयोग करें।
- उचित समय एवं सही तरीके से पौधों की रोपाई करें।

रोपाई पंक्तियों में करनी चाहिये तथा कतार से कतार एवं पौधे से पौधे की बीच उचित स्थान छोड़ना चाहिये। फैलने वाले पौधो के लिए कतार से कतार की दूरी अधिक रहती है ताकि पौधे को बढ़ने के लिए उचित स्थान मिल सके। विभिन्न फलों एवं फूलों में पौधे से पौधे की दूरी एवं कतार से कतार की दूरी अलग-अलग होती है अतः इसको ध्यान में रखते हुए बुवाई करनी चाहिए। उर्वरक की दो अन्य खुराकें 1 महीने बाद तथा अगली खुराक समान्यतया अगले 1-1.5 महीने बाद फूल आने के समय दी जाती है। इसके बाद ऋतु एवं आवश्यकतानुसार समय-समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए। पौधों को

पहले 40-50 दिनों तक खरपतवार मुक्त रखना आवश्यक है अतः समय-समय पर खुरपी द्वारा निराई-गुड़ाई करते रहें। पौधों को पंक्तियों में बोने से फल एवं फूल पक जाने के बाद तोड़ने की सुविधा रहती है। फल एवं फूलों की उचित समय पर तोड़ाई कर लेनी चाहिए।

नर्सरी तैयार करने की विधि

रोपाई करने के लिए पौधे तैयार करने के लिए नर्सरी बनाने हेतु 4-5 बार गुड़ाई करके मिट्टी को अच्छी प्रकार से भुरभुरा बना लेना चाहिये और गोबर की खाद आदि उचित मात्रा में मिला दें। इसके पश्चात् बीजों को पौधों की किस्म के आधार पर निश्चित दूरी में बो देना चाहिए। बीजों को 1.5 से.मी. से अधिक गहराई में नहीं बोना चाहिए अन्यथा अंकुरण होने में समस्या आती है और बीज देर से अंकुरित होते हैं। बीज बोते समय एक मुट्ठी भर डीएपी एवं बीज उगने के 5-6 दिन बाद यूरिया 2 मुट्ठी भर प्रति 10 वर्ग मीटर में लगाने से पौधों की बढ़वार अच्छी रहती है। बीज को क्यारियों में बोने के बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। बुवाई के 1-2 हफ्ते में बीज अंकुरित हो जाते हैं और 1 महीने में रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं।

रोपाई करना

रोपाई करने के 1-2 दिन पहले सिंचाई देनी चाहिए इससे मिट्टी नम हो जाती है और पौधों की जड़े आसानी से बिना अधिक नुकसान के मिट्टी से बाहर निकल आती है। पौधों की रोपाई करने से पहले खेत / क्यारियाँ / थाले तैयार कर लेने चाहिए। इसके लिए पहले बताई गयी विधि के अनुसार जुताई करके तथा उर्वरक डाल कर मिट्टी को तैयार कर लेना चाहिए। उर्वरक की पहली खुराक पौधों की किस्म के अनुसार निर्दिष्ट मात्रा में रोपाई के पहले मिट्टी में छिड़ककर दे देनी चाहिए तथा इसके तुरंत बाद सिंचाई करनी चाहिए जिससे उर्वरक अच्छी तरह प्रभावी हो जायें। इसके 1-2 दिन बाद पौधों की रोपाई करनी चाहिए। रोपाई करने के लिए 15-20 से.मी. ऊँची व 1.25 मीटर चौड़ी तथा आवश्यकतानुसार लम्बी क्यारियाँ बना ली जाती हैं। दो क्यारियों के बीच 30 से.मी. चौड़ी नाली छोड़ देते हैं, जिससे कि निराई-गुड़ाई व पानी की निकासी में आसानी रहती है। पौधों को शाम के समय रोपना चाहिए तथा रोपने के बाद हल्की सिंचाई देनी चाहिए। पौधों को पहले 40-50 दिनों तक खरपतवार मुक्त रखना आवश्यक है

अतः समय-समय पर खुरपी द्वारा निराई गुड़ाई करते रहें। उर्वरक की दो अन्य खुराकें 1 महीने बाद तथा अगली खुराक समान्यता अगले 1-1.5 महीने बाद फूल आने के समय दी जाती है। इसके अतिरिक्त ऋतु एवं आवश्यकतानुसार समय-समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए।

6.3 पौधों की देखभाल करना

कीट एवं व्याधि नियंत्रण

- मिट्टी में दीमक की उपस्थिति शुष्क क्षेत्रों में बहुत बड़ी समस्या है। इसके निदान के लिए क्यूनाल्फोस या क्लोरपाइरीफोस 20-25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से भूमि का उपचार करना चाहिए।
- पौधों में कीट व व्याधि की समस्या अक्सर देखी जाती है, अतः अगर ऐसी समस्या अधिक मात्रा में आए तो पौधों की किस्म के अनुसार उचित जानकारी लेकर कीटनाशक एवं रोग नियंत्रक का छिड़काव करना चाहिए।
- लघु वाटिका में नीम की खली के प्रयोग से भी कीड़ों व बीमारियों की रोकथाम में मदद मिलती है।

फल एवं फूलों को गमलों डिब्बों आदि में सीमित स्तर पर उगाना

सभी प्रकार के फलों एवं फूलों को गमलों, डिब्बों, पोलीथीन के थैलों में उगाना संभव नहीं है। परन्तु अगर जगह की कमी हो तो थोड़े से प्रयास से मन्दिर परिसर में ही गमलों में कुछ फूल एवं फल उगाए जा सकते हैं। जैसे गहरी जड़ो वाले पौधे (जैसे गेंदा, गुलाब, जुही, चम्पा, चमेली आदि)

सफल पैदावार लेने के लिए निम्न सुझावों को ध्यान में रखें

- सही किस्म के पौधे चुने जो अत्यधिक ज्यादा जगह न लेते हो।
- पौधों की संख्या सीमित हो।
- गमलों आदि का समुचित जल निकास अति आवश्यक है।
- प्लास्टिक के गमलों की जगह मिट्टी के गमलों में पौधे लगाएँ।

गमलों के पौधों से भरपूर उपज लेने के लिए मुख्य जानकारियाँ

गमले तैयार करना

- गमलों, थैलों, टिनों आदि में पानी की निकासी के लिए तली में 1-2 सुराख कर दें।

- पेंदे पर कंकड़-पत्थरों की एक पतली परत लगाएं फिर उसके ऊपर रेत की दूसरी परत से ढक दें पानी लगाने के लिए ऊपर का 2.5 से 5.0 से.मी. स्थान खाली छोड़कर गमले का शेष भाग मिट्टी से भर दें।

बीज/पौध की बुआई

- बुआई से पहले खाद ऊपर की कुछ से.मी. मिट्टी में अच्छी तरह मिलाएं।
- बीज की बुआई 2.5 से.मी. गहराई में करें।
- उचित मात्रा में फव्वारे से सिंचाई करते रहें।

इस प्रकार स्थान की उपलब्धता के अनुसार लघु वाटिका में विभिन्न फूल एवं फलों का उत्पादन किया जा सकता है। इससे न केवल वर्ष भर ताजे एवं उत्तम गुणवत्ता वाली फल एवं फूल पूजन हेतु मिलते हैं बल्कि पैसे की बचत भी होती है और मन्दिर का अर्थिक स्तर भी सुधरता है। यह मन्दिर समिति के सभी सदस्यों द्वारा आसानी से मिल-जुल कर किया जा सकता है तथा आज के युग में जब बाजार में मिलावट एवं विषैले तत्वों युक्त खाद्य पदार्थों की भरमार है यह एक आदर्श विकल्प है।

लघु वाटिका लगाने के लाभ

- मन्दिर की आवश्यकतानुसार ताजे एवं स्वादिष्ट फल वर्ष भर उपलब्ध होते हैं।
- मन्दिर के चारों ओर खाली पडी हुई भूमि में सरलता से पौधे उगाए जा सकते हैं।
- पूजन कार्यों में प्रयुक्त हो चुके जल का पौधों की सिंचाई में सदुपयोग हो सकता है एवं निर्माल्य का कम्पोस्ट खाद बना कर प्रयोग किया जा सकता है।
- फल फूल खरीदने के लिए बाजार नहीं जाना पड़ता बल्कि मन्दिर परिसर में ही ताजे, स्वादिष्ट फल तथा फूल नियमित रूप में मिलते रहते हैं।
- बाजार की तुलना में सस्ती एवं उत्तम गुणवत्ता वाले फल एवं फूल मिलते हैं।
- लघु वाटिका में उगे फल एवं फूल में जहरीली दवाइयों एवं कीटनाशकों का प्रभाव नहीं होता है, जो कि बाजार से खरीदी हुई फल एवं फूलो में हो सकता है।

• लघु वाटिका की फल एवं फूल में कृत्रिम रंग, रसायनों, एवं उन संक्रामक रोगों के जीवाणुओं की उपस्थिति का भय नहीं रहता जो बाजार से खरीदी गयी फल एवं फूलों में हो सकता है।

• मन्दिर में आने वाले श्रद्धालुओं को भी यह कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी।

• लकड़ी के डिब्बों, गमलों, बेकार टिनों पर सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

• कीमती कृषि औजारों की आवश्यकता नहीं होती है। घरेलू औजारों को प्रयोग में ला सकते हैं।

अभ्यास कार्य-

1. मन्दिर परिसर में लघु वाटिका लगाने के लाभ लिखिए ।
2. मन्दिर परिसर में लगाने योग्य फूल एवं फल वाले पौधों के नाम लिखिए।
3. मन्दिर परिसर में लगें पौधों की उर्वरक क्षमता बढ़ाने हेतु कम्पोस्ट खाद बनाने की विधि लिखिए
4. फूल एवं फल वाले पौधों को कीटों से बचाने के लिए उपाय लिखिए।
5. मन्दिर परिसर में लघु वाटिका निर्माण की विधि लिखिए।

7 भारत के प्रसिद्ध मन्दिरों के मूर्तिशास्त्र का परिचय

7.1. श्री महाकालेश्वर मन्दिर- यह मध्य प्रदेश के उज्जैन नगर में स्थित है, द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक और एकमात्र दक्षिणमुखी ज्योतिर्लिंग है। यह मंदिर न केवल धार्मिक महत्व रखता है, बल्कि मूर्तिशास्त्र और वास्तुशास्त्र की दृष्टि से भी अत्यंत विशिष्ट है।

श्री महाकालेश्वर मंदिर का मूर्तिशास्त्रीय परिचय

१. महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग की मूर्तिशास्त्रीय विशेषताएँ

1. दक्षिणमुखी शिवलिंग – सामान्यतः शिवलिंग उत्तर या पूर्वमुखी होते हैं, किंतु महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग दक्षिणमुखी है

2. स्वयंभू लिंग – यह शिवलिंग स्वयं प्रकट हुआ (स्वयंभू) माना जाता है, जिससे इसकी आध्यात्मिक और मूर्तिशास्त्रीय महत्ता और बढ़ जाती है।

3. शिवलिंग का स्वरूप – लिंगम साधारणतः चिकना एवं गोल होता है, लेकिन महाकाल का लिंगम प्राकृतिक रूप से उभरा हुआ, अलौकिक आकृति वाला है।

2. मंदिर की मूर्तिकला और शिल्पशैली

1. नागर शैली की विशेषताएँ – यह मंदिर प्राचीन नागर स्थापत्य शैली में निर्मित है, जिसमें ऊँचा शिखर, संकीर्ण प्रवेशद्वार और जटिल नक्काशी देखने को मिलती है।

2. मूर्तिकला की बारीकियाँ –

- दीवारों और स्तंभों पर देवी-देवताओं, अप्सराओं, गंधर्वों और महाकाल की लीलाओं से संबंधित सुंदर शिल्प उकेरे गए हैं।
- गरुड़ स्तंभ और विभिन्न यक्ष-यक्षिणियों की मूर्तियाँ मंदिर परिसर में प्रतिष्ठित हैं।
- द्वार पर शिव, गणेश, कार्तिकेय, नंदी और अन्य पारिवारिक सदस्यों की सुंदर मूर्तियाँ हैं।

3. महाकाल की विविध रूपों में प्रतिष्ठा –

- महाकालेश्वर (मुख्य शिवलिंग) – अद्वितीय ज्योतिर्लिंग स्वरूप।
- ओंकारेश्वर (ऊपर के तल पर स्थित लिंग) – परम तत्व का प्रतीक।
- नागचंद्रेश्वर (तीसरे तल पर स्थित लिंग) – विशेष रूप से नागपंचमी को दर्शन हेतु खुलता है

7.2. श्री जगन्नाथ मन्दिर - श्री जगन्नाथ मंदिर, जो ओडिशा के पुरी में स्थित है, भारत के चार प्रमुख धामों में से एक है। यह मंदिर अपनी अनूठी मूर्तिकला और स्थापत्य शैली के लिए प्रसिद्ध है। श्री जगन्नाथ, बलभद्र और देवी सुभद्रा की मूर्तियाँ न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि मूर्तिशास्त्र की दृष्टि से भी अनोखी और विशिष्ट हैं।

मूर्तिशास्त्रीय परिचय

1. जगन्नाथ मंदिर की मूर्तिशास्त्रीय विशेषताएँ

(क) भगवान जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की मूर्तियाँ

1. काष्ठमयी (लकड़ी की) मूर्तियाँ

- जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की मूर्तियाँ सामान्यतः पत्थर या धातु में नहीं, बल्कि 'दारु-ब्रह्म' (विशेष प्रकार की पवित्र लकडी, जिसे नीम के पेड़ से प्राप्त किया जाता है) में निर्मित होती हैं।
- इन मूर्तियों को एक निश्चित अवधि (लगभग 12 से 19 वर्ष) के बाद "नवकलेवर" प्रक्रिया के तहत बदल दिया जाता है।

2. अलौकिक आकार एवं स्वरूप

- भगवान जगन्नाथ – बड़ी गोल आँखें, बिना बाहों वाला चौड़ा शरीर, अर्द्धचंद्राकार मुखमंडल।
- भगवान बलभद्र – हल्का मुस्कराता मुख, गोल नेत्र, मस्तक पर सर्प का चिह्न।
- देवी सुभद्रा – गोल व छोटी आकृति, बिना बाहों वाली मूर्ति, सौम्य मुद्रा।

3. मूर्तियों की अनूठी विशेषताएँ

- अन्य मंदिरों की तरह पारंपरिक मानव-समान आकार न होकर, यहाँ की मूर्तियाँ अमूर्त रूप में बनी हुई हैं।
- मूर्तियाँ अलंकृत नहीं होतीं, बल्कि वस्त्रों और विशेष आभूषणों से श्रृंगारित की जाती हैं।
- इनके विशाल नेत्र दिव्य दृष्टि का प्रतीक माने जाते हैं।

(ख) मंदिर की अन्य मूर्तियाँ एवं शिल्पशैली

1. नागर-कलिंग शैली की मूर्तियाँ

- मंदिर की बाहरी दीवारों पर भगवान विष्णु, शिव, पार्वती, गणेश, नृसिंह, वराह, यक्ष-यक्षिणियाँ और गंधर्वों की सुंदर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

- मूर्तियों में ओडिशा की पारंपरिक "कलिंग" शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखता है, जो बारीक नक्काशी और गतिशील आकृतियों के लिए प्रसिद्ध है।

2. सिंहद्वार पर द्वारपालों की विशाल मूर्तियाँ

- मंदिर के मुख्य प्रवेशद्वार "सिंहद्वार" (सिंह द्वार) पर दो विशाल सिंहों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, जो शक्ति और सुरक्षा के प्रतीक माने जाते हैं।
- अन्य द्वारों पर अश्व, गरुड़ और हाथी की मूर्तियाँ भी अंकित हैं।

3. नीलचक्र और सुदर्शन चक्र

मंदिर के शीर्ष पर प्रतिष्ठित "नीलचक्र" (धातु से निर्मित चक्र) और गर्भगृह में स्थित "सुदर्शन चक्र" की मूर्तियाँ अत्यंत पवित्र मानी जाती हैं।

4. अन्य महत्वपूर्ण मूर्तियाँ

मंदिर के अंदर महालक्ष्मी, भुवनेश्वरी, नरसिंह, पंचमुखी हनुमान और अन्य देवी-देवताओं की विभिन्न मूर्तियाँ स्थित हैं।

2. मूर्तिशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण

1. अमूर्त रूप (Abstract Iconography) – अन्य मंदिरों की मूर्तियों के विपरीत, यहाँ की प्रतिमाएँ मानवाकृति से भिन्न हैं और अधिक प्रतीकात्मक रूप में निर्मित हैं।

2. विशाल नेत्र – यह दिव्य दृष्टि और सार्वभौमिक जागरूकता का प्रतीक माने जाते हैं।

3. काष्ठमयी स्वरूप – शास्त्रों में "दारु-ब्रह्म" का उल्लेख मिलता है, जो दर्शाता है कि भगवान स्वयं इस रूप में भक्तों के समक्ष प्रकट होते हैं।

4. **रथयात्रा का मूर्तिशास्त्रीय महत्त्व** – भगवान के रथ पर विराजमान होने का अर्थ है कि वे स्वयं भक्तों के पास आते हैं, जो भक्ति मार्ग का महत्त्वपूर्ण संदेश देता है।

7.3. तिरुपति बालाजी मन्दिर- तिरुपति बालाजी मंदिर में प्रतिष्ठित भगवान वेंकटेश्वर की मूर्ति को भारतीय मूर्तिशास्त्र और शिल्पशास्त्र के अनुसार अद्वितीय माना जाता है

1. द्रविड़ शैली की मूर्ति:

- तिरुपति बालाजी की मूर्ति दक्षिण भारतीय द्रविड़ वास्तु और मूर्तिशिल्प परंपरा के अनुसार बनाई गई है।
- यह पंचधातु (सोना, चांदी, तांबा, लोहा और जस्ता) या शालिग्राम शिला से बनी होने की मान्यता है।

2. चाक्षुष लक्षण (नेत्र विशेषता):

- भगवान वेंकटेश्वर की मूर्ति के नेत्र आधे खुले और आधे बंद हैं, जिसे योगनिद्रा मुद्रा कहा जाता है।
- इसका अर्थ यह है कि वे सदा ध्यानस्थ हैं, लेकिन अपने भक्तों पर कृपा बनाए रखते हैं।

3. कंकण (हाथों की मुद्रा और आभूषण):

भगवान के दाहिने हाथ में "वरद मुद्रा" है, जो भक्तों को आशीर्वाद देने का संकेत है।

बाएँ हाथ में कटि (कमर) को स्पर्श करने वाली मुद्रा है, जिसे भक्तों को शरणागत करने का संकेत माना जाता है।

4. किरिट (मुकुट) और श्रीवात्स चिह्नः

- भगवान वेंकटेश्वर के मुकुट को 'शेषशायी विष्णु' का प्रतीक माना जाता है।
- वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह और लक्ष्मीजी का वास भी दर्शाया गया है।

5. नाभिकेशर रहस्य:

- भगवान की मूर्ति के नाभि से जल प्रवाहित होता है, जिसे रहस्यमयी माना जाता है।
- इसे वैकुंठ से जुड़ी दिव्य ऊर्जा का स्रोत कहा जाता है।

6. ध्वन्यात्मक प्रभाव (मूर्ति से आने वाली ध्वनि):

- ऐसा कहा जाता है कि जब मूर्ति के पीछे कान लगाकर सुना जाए, तो समुद्र की लहरों जैसी ध्वनि सुनाई देती है

7.4. सोमनाथ मन्दिर-

(क) मंदिर की वास्तु और शिल्पशैली:

- सोमनाथ मंदिर चालुक्य शैली में निर्मित है, जिसे "कैलाश महामेरु प्रतिष्ठा" के अनुसार बनाया गया है।

- मंदिर के शिखर की ऊँचाई १५० फीट है और इसकी बनावट ऐसी है कि समुद्र की लहरें इसकी दीवारों से टकराकर वापस लौट जाती हैं।
- गर्भगृह, सभा मंडप और नृत्य मंडप की मूर्तियों पर उत्कृष्ट नक्काशी की गई है।

(ख) मंदिर की मुख्य मूर्तियाँ और शिल्पकला:

- मंदिर के स्तंभों और दीवारों पर भगवान शिव, नंदी, गणेश, कार्तिकेय, और सप्त ऋषियों की मूर्तियाँ उकेरी गई हैं।
- मंदिर के द्वारों पर अद्भुत द्वारपाल (गुह्य शक्ति के प्रतीक) की आकृतियाँ हैं।
- मंदिर के बाहरी दीवारों पर पौराणिक कथाओं से संबंधित चित्रों की नक्काशी की गई है, जिसमें शिवलीला, समुद्र मंथन, और रुद्र तांडव के दृश्य प्रमुख हैं।

7.5. कामाख्या माता मन्दिर- कामाख्या मंदिर का वास्तु और मूर्तिशास्त्रीय विशेषताएँ

(क) मंदिर की वास्तुकला

- मंदिर नागर और अहोम वास्तुशैली में बना हुआ है।
- इसमें मुख्य रूप से गुम्बदाकार शिखर (बीहू शैली) देखने को मिलता है, जो सामान्य हिंदू मंदिरों से अलग है।
- मंदिर का गुंबद "छत्रक" आकार का है, जो स्त्री ऊर्जा का प्रतीक है।

(ख) मंदिर की शिल्पकला और मूर्तियाँ

- मंदिर के दीवारों पर देवी-देवताओं, अप्सराओं, और तांत्रिक प्रतीकों की सुंदर नक्काशी की गई है।
- गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर देवी की विभिन्न रूपों की मूर्तियाँ उकेरी गई हैं।
- मंदिर परिसर में दस महाविद्याओं (काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुर भैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमला) की मूर्तियाँ भी स्थापित हैं।

7.6. नाथद्वारा मन्दिर - नाथद्वारा मंदिर और मूर्तिशास्त्र का परिचय -नाथद्वारा मंदिर राजस्थान के राजसमंद जिले में स्थित है और यह श्रीनाथजी (भगवान कृष्ण) का प्रसिद्ध मंदिर है। यह मंदिर वैष्णव

संप्रदाय, विशेष रूप से पुष्टिमार्ग के अनुयायियों के लिए अत्यंत पवित्र स्थल है। मूर्तिशास्त्र की दृष्टि से यह मंदिर अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें प्रतिष्ठित श्रीनाथजी की मूर्ति भारतीय शिल्पकला और भक्ति परंपरा का अद्भुत संगम है।

1. श्रीनाथजी की मूर्ति का स्वरूप

1. मूर्ति का निर्माण और स्वरूप:

- श्रीनाथजी की मूर्ति काले रंग की एकलाशिला (एक ही पत्थर) से बनी हुई है।
- यह मूर्ति भगवान कृष्ण के गोवर्धनधारी स्वरूप को दर्शाती है, जिसमें वे बाएं हाथ से गोवर्धन पर्वत उठा रहे हैं और दायां हाथ कमर पर रखा हुआ है।
- श्रीनाथजी की यह प्रतिमा मथुरा के गोवर्धन पर्वत से संबंधित मानी जाती है और इसे वहां से लाकर नाथद्वारा में प्रतिष्ठित किया गया।

7.7. **काशी विश्वनाथ मन्दिर-**

1. ज्योतिर्लिंग का स्वरूप:

- यह ज्योतिर्लिंग स्मरणीय आकार (अल्पवृत्ताकार) में स्थित है और इसे दिव्य ऊर्जा का स्रोत माना जाता है।
- शिवलिंग कालातीत (बिना किसी परिवर्तन के रहने वाला) है, जो शिव के अनंत और अजन्मा स्वरूप को दर्शाता है।
- इस ज्योतिर्लिंग को "स्वयंभू लिंग" भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है कि यह किसी मानव द्वारा स्थापित नहीं किया गया, बल्कि स्वयं प्रकट हुआ।

2. मूर्ति की विशेषताएँ:

- शिवलिंग काले पाषाण (काले पत्थर) का बना हुआ है।
- यह मंदिर के गर्भगृह में प्रतिष्ठित है और इसके ऊपर सोने से बना विशाल शिखर स्थित है।

7.10. **बद्रीनाथ मन्दिर-**

बद्रीनाथ मंदिर का मूर्तिशास्त्र परिचय

बद्रीनाथ मंदिर उत्तराखंड के चमोली जिले में स्थित भारत के प्रमुख चार धामों में से एक है। यह भगवान विष्णु के बद्री नारायण स्वरूप को समर्पित है। इस मंदिर की मूर्ति शास्त्रीय दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसे शालिग्राम शिला से निर्मित एक अद्वितीय प्रतिमा माना जाता है।

मूर्तिशास्त्रीय विशेषताएँ

1. मूर्ति का निर्माण एवं स्वरूप:

बद्रीनाथ मंदिर में स्थित भगवान विष्णु की मूर्ति शालिग्राम पत्थर से बनी हुई है, जिसे दिव्य एवं स्वयंभू (स्वतः प्रकट) माना जाता है।

यह प्रतिमा काले रंग की है और लगभग 3.3 फीट ऊँची है।

मूर्ति ध्यान मुद्रा में पद्मासन में स्थित है, जो योग और ध्यान का प्रतीक है।

विष्णुजी के चार हाथ हैं—एक में शंख, दूसरे में चक्र, तीसरे में गदा और चौथे में पद्म (कमल) धारण किए हुए हैं।

2. मूर्ति की शैली और समयकाल:

यह मूर्ति नागर शैली की है और गुप्तकाल (4वीं से 6वीं शताब्दी) की मूर्तिकला परंपरा का अनुपम उदाहरण मानी जाती है।

मूर्ति में गुप्तकालीन विशेषताओं जैसे- कोमल facial features, उत्तम नक्काशी, एवं संतुलित अनुपात का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

3. वस्त्र एवं अलंकरण:

भगवान बद्री नारायण को सोने एवं चाँदी के आभूषणों से सजाया जाता है।

गले में वनमाला और मुकुट धारण किए हुए हैं।

शीतकाल में मूर्ति को गर्म ऊनी वस्त्रों से ढका जाता है।

4. मूर्ति से संबंधित धार्मिक मान्यताएँ:

कहा जाता है कि यह प्रतिमा स्वयं भगवान शंकर ने नारद मुनि के कहने पर स्थापित की थी, जिसे बाद में आदि शंकराचार्य ने पुनः प्रकट कर बद्रीनाथ मंदिर में प्रतिष्ठित किया।

इस प्रतिमा का पूजन शंकराचार्य परंपरा के अनुसार किया जाता है।

5. अन्य मूर्तियाँ एवं मंदिर की मूर्तिकला:

बद्रीनाथ मंदिर में अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी हैं, जिनमें कुबेर, उद्धव, गरुड़, एवं नारायण के अन्य स्वरूपों की प्रतिमाएँ शामिल हैं।

मंदिर के स्तंभों और दीवारों पर हिंदू शास्त्रों से प्रेरित नक्काशी और चित्र उकेरे गए हैं।

7.11. मीनाक्षी सुन्दरेश्वर मन्दिर

7.12. संकटमोचन हनुमान मन्दिर (वाराणसी)

7.12. **अक्षरधाम मन्दिर (दिल्ली)**-

मूर्तिशास्त्रीय परिचय

अक्षरधाम मंदिर, जिसे स्वामीनारायण अक्षरधाम भी कहा जाता है, भारत की आधुनिक और भव्य मंदिर स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह मंदिर दिल्ली में यमुना नदी के तट पर स्थित है और 6 नवंबर 2005 को स्वामीनारायण संप्रदाय द्वारा बनवाया गया था। यह मंदिर न केवल आध्यात्मिक महत्व रखता है, बल्कि इसकी मूर्तिशिल्पीय विशेषताएँ भी इसे अद्वितीय बनाती हैं।

मूर्तिशास्त्रीय विशेषताएँ

1. प्रमुख मूर्ति – भगवान स्वामीनारायण

मंदिर के मुख्य गर्भगृह में भगवान स्वामीनारायण की भव्य मूर्ति स्थापित है।

यह मूर्ति पंचधातु (सोना, चाँदी, तांबा, जस्ता और लोहा) से बनी हुई है।

भगवान स्वामीनारायण की प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में विराजमान है, जो ध्यान और ज्ञान का प्रतीक है।

2. मंदिर में स्थापित अन्य मूर्तियाँ

मंदिर में भगवान राम, लक्ष्मण, सीता, श्रीकृष्ण, राधा, भगवान शिव, माता पार्वती, श्री गणेश और हनुमानजी की भव्य मूर्तियाँ भी स्थापित हैं।

प्रत्येक मूर्ति को अत्यंत सुंदर ढंग से अलंकृत किया गया है और उनकी मुद्राएँ भक्तिभाव और दिव्यता को प्रकट करती हैं।

3. मूर्तिकला और स्थापत्य शैली

यह मंदिर प्राचीन भारतीय वास्तुकला पर आधारित है और इसमें नागर शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

इसमें राजस्थान और गुजरात की पारंपरिक पत्थर नक्काशी का सुंदर समावेश किया गया है।

मंदिर के स्तंभों और दीवारों पर देवी-देवताओं, संतों, पशु-पक्षियों और पौराणिक कथाओं को उकेरा गया है, जो भारतीय कला और संस्कृति का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

इसमें 234 खूबसूरती से नक्काशीदार स्तंभ, 9 अलंकृत गुम्बद और 20,000 से अधिक मूर्तियाँ तथा कलाकृतियाँ शामिल हैं।

4. प्रमुख मूर्तिशिल्पीय आकर्षण

गजराज पिठ (गजेंद्र पिठ): मंदिर के आधार पर 148 हाथियों की विशाल मूर्तियाँ बनाई गई हैं, जो प्राचीन भारत में हाथियों के महत्व को दर्शाती हैं।

यज्ञपुरुष कुंड: यह भारत का सबसे बड़ा स्टेप-वेल (सीढ़ीदार कुंड) है, जिसमें आध्यात्मिक और वास्तुशिल्पीय सौंदर्य देखने को मिलता है।

संस्कृत शिलालेख और उकेरी गई कथाएँ: दीवारों पर शास्त्रों से लिए गए श्लोक और पौराणिक कथाएँ दर्शाई गई हैं।

7.13. **लक्ष्मीनारायण मंदिर (बिड़ला मंदिर), दिल्ली**

का मूर्तिशास्त्रीय परिचय

लक्ष्मीनारायण मंदिर, जिसे बिड़ला मंदिर के नाम से भी जाना जाता है, दिल्ली का एक प्रसिद्ध हिंदू मंदिर है। यह मंदिर भगवान विष्णु (नारायण) और माता लक्ष्मी को समर्पित है। इसका निर्माण प्रसिद्ध उद्योगपति बिड़ला परिवार द्वारा 1938 में कराया गया था और इसका उद्घाटन महात्मा गांधी द्वारा किया गया था। यह मंदिर अपने भव्य स्थापत्य और मूर्तिशिल्पीय सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध है।

मूर्तिशास्त्रीय विशेषताएँ

1. प्रमुख देवता – लक्ष्मीनारायण जी की मूर्ति

मंदिर के गर्भगृह में भगवान विष्णु (नारायण) और माता लक्ष्मी की भव्य मूर्ति स्थापित है।

मूर्तियाँ शुद्ध संगमरमर से निर्मित हैं और अत्यंत आकर्षक एवं दिव्य आभा से युक्त हैं।

भगवान विष्णु खड़े हुए मुद्रा में हैं और माता लक्ष्मी उनके साथ विराजमान हैं, जो ऐश्वर्य, सौभाग्य और समृद्धि की प्रतीक हैं।

2. मूर्तियों की कला और शिल्प

मूर्तियों का निर्माण प्राचीन भारतीय मूर्तिकला परंपरा के अनुसार किया गया है, जिसमें नागर शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

विष्णु जी की प्रतिमा में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए हैं, जो उनके चारों प्रमुख गुणों – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को दर्शाते हैं।

लक्ष्मी जी की प्रतिमा में कमल और आशीर्वाद की मुद्रा दिखाई गई है, जो सुख-समृद्धि का प्रतीक है।

3. अन्य मूर्तियाँ

मंदिर परिसर में भगवान शिव, गणेश, हनुमान और बुद्ध की सुंदर प्रतिमाएँ भी स्थापित हैं।

यहाँ भगवद्गीता के उपदेशों और पौराणिक कथाओं को उकेरा गया है, जो धार्मिक और दार्शनिक महत्व को दर्शाता है।

4. स्थापत्य और अलंकरण

मंदिर का निर्माण राजस्थान के उच्च गुणवत्ता वाले संगमरमर और बलुआ पत्थर से किया गया है।

दीवारों और छतों पर सुंदर नक्काशी और चित्र उकेरे गए हैं, जो भारतीय कला और संस्कृति को दर्शाते हैं।

पूरे मंदिर में रंगीन कांच और भित्ति चित्रों का प्रयोग किया गया है, जिससे इसकी सुंदरता और बढ़ जाती है।

7.14. सबरीमाला मंदिर -

(क) भगवान अय्यप्पा की मूर्ति का स्वरूप

1. **मूर्ति की बनावट और मुद्रा:**

- भगवान अय्यप्पा की प्रतिमा पंचधातु (सोना, चांदी, तांबा, लोहा और जस्ता) से बनी हुई है।
- मूर्ति में भगवान अय्यप्पा योगमुद्रा (ध्यानस्थ स्थिति) में बैठे हुए हैं।
- उनकी मुद्रा को "विरासन" कहा जाता है, जिसमें भगवान दोनों घुटनों को मोड़कर ध्यान में लीन हैं।
- यह मूर्ति उनकी योगी और ब्रह्मचारी (नैष्ठिक ब्रह्मचर्य) रूप को दर्शाती है।

2. मूर्ति की विशेषताएँ:

- भगवान अय्यप्पा के सिर पर सोने से बना मुकुट है।
- उनके हाथों की मुद्रा भक्तों को आशीर्वाद देती हुई प्रतीत होती है।
- मूर्ति के चेहरे पर शांत और दिव्य तेज देखने को मिलता है, जो उनके आध्यात्मिक स्वरूप को दर्शाता है।
- मूर्ति को रुद्राक्ष की माला, स्वर्ण आभूषण, और तुलसी की माला से सजाया जाता है।

7.15. पद्मनाभस्वामी मन्दिर-

(क) भगवान पद्मनाभस्वामी की मूर्ति का स्वरूप

1. अनंतशयन मुद्रा:

- भगवान विष्णु की यह मूर्ति शेषनाग (अनंतनाग) पर शयन करते हुए प्रदर्शित की गई है।
- यह मुद्रा योग-निद्रा या विश्व सृजन के पूर्व की स्थिति को दर्शाती है।
- मूर्तिशास्त्र में इसे "अनंतशयनम" कहा जाता है, जो विश्राम और ब्रह्मांडीय संतुलन का प्रतीक है।

2. मूर्ति का निर्माण:

- मूर्ति "कथुशारशिला" नामक विशेष पत्थर (आयुर्वेदिक और जड़ी-बूटियों से युक्त सामग्री) से बनी है।
- यह सामग्री न केवल दिव्य ऊर्जा को बनाए रखती है, बल्कि इसे अविनाशी और शीतल भी बनाती है।
- मूर्ति में भगवान विष्णु सुदर्शन चक्र, गदा, शंख और पद्म (कमल) धारण किए हुए हैं।

3. मूर्ति की विशेष संरचना:

यह मूर्ति लगभग 18 फीट लंबी है और इसे तीन द्वारों से देखा जा सकता है:

- पहले द्वार से भगवान विष्णु का सिर और ऊपरी धड़।
- दूसरे द्वार से नाभि और कमल पुष्प से प्रकट ब्रह्मा।
- तीसरे द्वार से पैरों का भाग और योग मुद्रा।

7.16. कोणार्क का सूर्य मन्दिर (ओडिसा)-

कोणार्क सूर्य मंदिर की मूर्तिशास्त्रीय विशेषताएँ-

1. सूर्य देव की मूर्तियाँ:

- मंदिर में सूर्य देव की तीन विशाल प्रतिमाएँ हैं, जो तीन अलग-अलग दिशाओं (पूर्व, पश्चिम और दक्षिण) में स्थापित हैं।
- ये प्रतिमाएँ सुबह, दोपहर और शाम के समय सूर्य की रोशनी से प्रकाशित होती हैं।
- सूर्य देव की मूर्तियाँ अश्वारोही रूप में बनी हैं, जिनमें वे रथ पर सवार हैं और उनके सात घोड़े रथ को खींच रहे हैं।

2. सप्ताश्वरथ (सात घोड़ों का रथ):

- मंदिर को एक विशाल रथ के रूप में डिजाइन किया गया है, जिसे सात घोड़े खींच रहे हैं।
- ये सात घोड़े सप्ताह के सात दिनों का प्रतीक हैं, जो यह दर्शाते हैं कि सूर्य देव अनवरत चलते रहते हैं।
- रथ के बारह विशाल पहिये हैं, जो बारह महीनों को दर्शाते हैं और इन पहियों पर अत्यंत सुंदर नक्काशी की गई है।

3. अलंकृत मूर्तियाँ और नक्काशी:

- मंदिर के बाहरी दीवारों पर देवताओं, अप्सराओं, योद्धाओं, राजाओं और नर्तकियों की भव्य मूर्तियाँ उकेरी गई हैं।
- सूर्य देव की मूर्तियों में मुकुट, जटिल आभूषण, और किरणों की सजावट की गई है, जो उनकी दैवीय ऊर्जा को दर्शाती है।
- विभिन्न मूर्तियों में संगीत, नृत्य, युद्ध, और प्रेम के दृश्य भी प्रदर्शित किए गए हैं।

7.17. मंगलागौरी मन्दिर (बिहार)

मूर्तिशास्त्र परिचय

मंगला गौरी मंदिर बिहार के गया जिले में स्थित एक प्रसिद्ध शक्तिपीठ है, जो माता सती के 51 शक्तिपीठों में से एक माना जाता है। इस मंदिर का धार्मिक, ऐतिहासिक एवं मूर्तिकला की दृष्टि से विशेष महत्व है।

मूर्तिशास्त्रीय परिचय

1. मुख्य प्रतिमा का स्वरूप:

मंगला गौरी देवी की प्रतिमा अत्यंत प्राचीन है और इन्हें "उग्र रूप" में दर्शाया गया है। देवी की प्रतिमा अलंकृत, शक्तिशाली एवं दिव्य आभा से युक्त है। इनका स्वरूप मातृशक्ति और करुणा का प्रतीक है।

2. मूर्तिकला शैली:

यह प्रतिमा भारतीय शिल्पकला की प्राचीन परंपरा को दर्शाती है, जिसमें गुप्त एवं पाल कालीन प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

देवी की मूर्ति काले पत्थर से निर्मित है और इसे गुप्तकाल (4वीं से 6वीं शताब्दी) की मूर्तिकला से जोड़ा जाता है।

मूर्ति में विशेष रूप से आभूषणों, मुद्रा और अलंकरण की सूक्ष्म नक्काशी देखने को मिलती है।

3. आसन एवं मुद्रा:

माता की प्रतिमा "अर्धपद्मासन" में विराजमान है, जो ध्यान एवं शक्ति का प्रतीक है।

देवी के हाथों में विभिन्न आयुध एवं आशीर्वाद देने की मुद्रा देखने को मिलती है।

4. प्रतिमा की विशेषताएँ:

देवी की आँखें बड़ी एवं भावप्रवण हैं, जो भक्तों के प्रति करुणा को दर्शाती हैं।

सिर पर मुकुट, शरीर पर आभूषणों की महीन नक्काशी, और वस्त्रों में सुंदर सिलवटों का चित्रण मूर्तिकला की उत्कृष्टता को दर्शाता है।

यह मूर्ति शक्ति साधना और तांत्रिक परंपरा से भी जुड़ी हुई है।

5. अन्य मूर्तियाँ और शिल्पकला:

मंदिर परिसर में शिवलिंग, गणेश, भैरव, तथा अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी मौजूद हैं, जो तत्कालीन मूर्तिकला के विविध रूपों को प्रदर्शित करती हैं।

दीवारों एवं खंभों पर की गई नक्काशी में पौराणिक कथाओं एवं देवी की महिमा को चित्रित किया गया है।

7.18. लिंगराज मंदिर

लिंगराज मंदिर के मूर्तिशास्त्र की विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

1. मुख्य शिवलिंग:

मंदिर का गर्भगृह एक विशाल स्वयंभू शिवलिंग को समर्पित है, जो 'हरिहर' स्वरूप में पूजित है (शिव और विष्णु का संयुक्त रूप)।

2. मंदिर की बाहरी मूर्तियाँ:

मंदिर की दीवारों और स्तंभों पर शिव, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, नंदी, और विभिन्न अप्सराओं व गंधर्वों की सुंदर मूर्तियाँ उकेरी गई हैं।

नृत्य करते हुए देवी-देवताओं और विभिन्न पौराणिक कथाओं के दृश्य भी मौजूद हैं।

3. शिल्प और नक्काशी:

मंदिर की ऊँची दीवारों पर की गई बारीक नक्काशी कालिंग शैली की परंपरा को दर्शाती है।

सिंहद्वार (मुख्य द्वार) पर द्वारपालों और पौराणिक जीवों की आकृतियाँ उकेरी गई हैं।

4. नंदी मंडप और अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ:

मंदिर परिसर में एक विशाल नंदी की मूर्ति स्थापित है।

भैरव, देवी दुर्गा, और अन्य हिंदू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी मंदिर की शोभा बढ़ाती हैं।

7. 19. विरूपाक्ष मंदिर

1. मुख्य शिवलिंग:

गर्भगृह में भगवान शिव विरुपाक्ष रूप में शिवलिंग के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

शिवलिंग की संरचना सरल लेकिन आध्यात्मिक आभा से युक्त है।

2. गोपुरम (मुख्य प्रवेश द्वार की मूर्तियाँ):

मुख्य गोपुरम (राजगोपुरम) लगभग 50 मीटर ऊँचा है और इस पर देवी-देवताओं, गंधर्वों, यक्षों, और अप्सराओं की सुंदर मूर्तियाँ उकेरी गई हैं।

इसमें रामायण, महाभारत, और शिव-पार्वती की कथाओं से जुड़ी मूर्तियाँ भी शामिल हैं।

3. दीवारों पर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ:

मंदिर की दीवारों पर विभिन्न हिंदू देवी-देवताओं, विशेष रूप से शिव, पार्वती, विष्णु, लक्ष्मी, गणेश और कार्तिकेय की सुंदर आकृतियाँ बनी हुई हैं।

कुछ मूर्तियाँ नृत्यरत अप्सराओं और विभिन्न पौराणिक पात्रों को दर्शाती हैं।

4. रंगमंडप की मूर्तियाँ:

रंगमंडप में कई स्तंभों पर उत्कृष्ट नक्काशी की गई है, जिनमें आध्यात्मिक और पौराणिक कथाओं को मूर्त रूप दिया गया है।

स्तंभों पर नरसिंह, हनुमान और गरुड़ की सुंदर मूर्तियाँ भी उकेरी गई हैं।

7.20.बृहदेश्वर मंदिर- बृहदेश्वर मंदिर तमिलनाडु के तंजावुर में स्थित एक भव्य मंदिर है, जिसे चोल वंश के राजा राजराजा चोल प्रथम ने 11वीं शताब्दी में बनवाया था। यह मंदिर भगवान शिव को समर्पित है और द्रविड़ स्थापत्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मूर्तिशास्त्र की विशेषताएँ:

1. मुख्य शिवलिंग:

गर्भगृह में लगभग 3.7 मीटर ऊँचा विशाल शिवलिंग प्रतिष्ठित है, जो भारत के सबसे बड़े शिवलिंगों में से एक है।

यह चोल शैली में बना हुआ है और शक्ति एवं भव्यता का प्रतीक माना जाता है।

2. नंदी मंडप की विशाल मूर्ति:

मंदिर के सामने एक विशाल नंदी (बैल) की प्रतिमा स्थित है, जो एक ही पत्थर से बनी हुई है।

यह लगभग 6 मीटर लंबी और 4 मीटर ऊँची है और इसका वजन लगभग 25 टन है।

यह भारत की सबसे बड़ी नंदी प्रतिमाओं में से एक मानी जाती है।

3. गोपुरम और बाहरी दीवारों की मूर्तियाँ:

बृहदेश्वर मंदिर का गोपुरम (गेटवे टॉवर) लगभग 66 मीटर ऊँचा है और इसमें शिव, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय और नटराज की सुंदर मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

मंदिर की बाहरी दीवारों पर 108 करन (भरतनाट्यम नृत्य मुद्राएँ) को दर्शाने वाली उत्कृष्ट मूर्तियाँ उकेरी गई हैं।

देवताओं के अलावा योद्धाओं, संगीतकारों, और नृत्यरत अप्सराओं की मूर्तियाँ भी दर्शाई गई हैं।

4. नटराज (तांडव मुद्रा में शिव):

मंदिर में भगवान शिव की नटराज रूप में नृत्य करते हुए अनेक मूर्तियाँ उकेरी गई हैं।

इन मूर्तियों में शिव के अनंद तांडव (सृजन और संहार का नृत्य) का दृश्य प्रमुख रूप से दिखाया गया है।

5. पार्वती और अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ:

मंदिर में देवी पार्वती, विष्णु, ब्रह्मा, दुर्गा और अन्य देवी-देवताओं की सुंदर मूर्तियाँ भी हैं।

कुछ मूर्तियाँ भगवान कार्तिकेय (शिव के पुत्र) की भी हैं, जो विशेष रूप से दक्षिण भारत में पूजे जाते हैं।

7.21. एकाम्रनाथेश्वर (एकाम्रेश्वर) मंदिर

कांचीपुरम का मूर्तिशास्त्र

एकाम्रनाथेश्वर मंदिर (या एकाम्रेश्वर मंदिर) तमिलनाडु के कांचीपुरम में स्थित एक प्राचीन शिव मंदिर है। यह मंदिर पल्लव, चोल और विजयनगर शासकों द्वारा समय-समय पर विकसित किया गया और दक्षिण भारतीय द्रविड़ स्थापत्य एवं मूर्तिकला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मूर्तिशास्त्र की विशेषताएँ

1. मुख्य शिवलिंग (एकाम्रनाथेश्वर लिंगम):

गर्भगृह में प्रतिष्ठित शिवलिंग 'एकाम्रनाथेश्वर' रूप में पूजित है।

इस शिवलिंग के बारे में मान्यता है कि देवी पार्वती ने इसे एक आम्र (आम) वृक्ष के नीचे स्थापित किया था।

2. देवी पार्वती और पंचमूर्ति:

मंदिर में देवी कामाक्षी (पार्वती) की एक विशेष मूर्ति है, जो ध्यान और भक्ति का प्रतीक मानी जाती है।

पंचमूर्ति—गणेश, कार्तिकेय, नंदी, चंद्र और सूर्य—की सुंदर मूर्तियाँ भी यहाँ विराजमान हैं।

3. नटराज की भव्य मूर्तियाँ:

मंदिर में शिव की नटराज मुद्रा में नृत्य करते हुए अद्वितीय मूर्तियाँ उकेरी गई हैं।

नटराज के विभिन्न तांडव रूपों को भी यहाँ दर्शाया गया है।

4. गोपुरम और दीवारों की नक्काशी:

मंदिर का गोपुरम (मुख्य द्वार) द्रविड़ शैली में बना हुआ है और इसमें शिव-पार्वती विवाह, गणेश की लीलाएँ, और अन्य पौराणिक कथाओं की मूर्तियाँ हैं।

दीवारों पर सप्तमातृका (सात माताओं), योगिनियाँ, और अन्य दिव्य मूर्तियाँ भी उकेरी गई हैं।

5. 1000 स्तंभों वाला मंडप:

इस मंदिर का मुख्य आकर्षण 1000 स्तंभों वाला हॉल (अयिराम काल मंडप) है, जिसमें हर स्तंभ पर सुंदर मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

7.22. श्री महालक्ष्मी मंदिर (कोल्हापुर) -

श्री महालक्ष्मी मंदिर महाराष्ट्र के कोल्हापुर में स्थित एक प्राचीन और प्रसिद्ध शक्ति पीठ है। यह मंदिर देवी महालक्ष्मी को समर्पित है, जो अंबाबाई के रूप में पूजी जाती हैं। इस मंदिर का निर्माण चालुक्य शासकों ने 7वीं-8वीं शताब्दी में करवाया था और यह द्रविड़-हेमाड़पंथि शैली में निर्मित है।

मूर्तिशास्त्र की विशेषताएँ

1. महालक्ष्मी देवी की मुख्य मूर्ति:

देवी महालक्ष्मी की प्रतिमा काले पत्थर (शालिग्राम) से निर्मित है।

यह प्रतिमा करीब 3 फीट ऊँची है और इसमें देवी को चार भुजाओं में विभिन्न शास्त्र और प्रतीक धारण किए हुए दर्शाया गया है।

दाहिने हाथों में माला और गदा, बाएँ हाथों में कमल और फल हैं, जो शक्ति, समृद्धि और कृपा के प्रतीक हैं।

यह मूर्ति उत्तराभिमुख (उत्तर दिशा की ओर मुख) है, जो दुर्लभ मूर्तिशास्त्र का उदाहरण है।

2. महालक्ष्मी के साथ अन्य देवताओं की मूर्तियाँ:

मंदिर में महासरस्वती, महाकाली, और महाविष्णु की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित हैं, जो त्रिदेवियों के रूप में पूजी जाती हैं।

मुख्य गर्भगृह के पास गणेश, कार्तिकेय, नवरात्रि देवी, और सूर्यदेव की भी मूर्तियाँ हैं।

3. मंदिर की बाहरी मूर्तियाँ और नक्काशी:

मंदिर की दीवारों और स्तंभों पर दक्षिण भारतीय और चालुक्य शैली की नक्काशी की गई है।

यहाँ सिंह, यक्ष, गंधर्व, अप्सराएँ और नृत्य मुद्राओं में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ उकेरी गई हैं।

गोपुरम (मुख्य प्रवेश द्वार) पर महिषासुर मर्दिनी, नवरात्रि की देवी, और शिव-पार्वती विवाह से जुड़े दृश्य दर्शाए गए हैं।

4. गरुड़ मंडप और नंदी मंडप की मूर्तियाँ:

मंदिर में एक भव्य गरुड़ मंडप है, जिसमें गरुड की अद्भुत प्रतिमा स्थापित है।

शिव मंदिर के पास नंदी की एक सुंदर मूर्ति भी प्रतिष्ठित है।

5. महासप्तमी और किरणोत्सव मूर्ति प्रभाव:

हर साल 21 फरवरी, 31 अगस्त, और 1 नवंबर को सूर्य की किरणें गर्भगृह में स्थापित महालक्ष्मी देवी की प्रतिमा पर सीधी पड़ती हैं, जिसे किरणोत्सव कहा जाता है।

यह इस मंदिर के अद्भुत वास्तुशास्त्र और मूर्तिशास्त्र का विशेष प्रमाण है।

7.24 संकट मोचन हनुमान मंदिर, वाराणसी का मूर्तिशास्त्रीय परिचय

संकट मोचन हनुमान मंदिर उत्तर प्रदेश के वाराणसी में स्थित एक प्रमुख धार्मिक स्थल है। यह मंदिर भगवान हनुमान को समर्पित है और इसे गोस्वामी तुलसीदास द्वारा स्थापित किया गया माना जाता है। इस मंदिर में स्थापित हनुमानजी की मूर्ति धार्मिक और मूर्तिशास्त्रीय दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मूर्तिशास्त्रीय विशेषताएँ

1. मूर्ति का स्वरूप और निर्माण:

संकट मोचन मंदिर में हनुमानजी की मूर्ति विशेष रूप से दक्षिणमुखी (दक्षिण दिशा की ओर मुख किए हुए) है।

यह प्रतिमा भगवान हनुमान के भक्तिभाव और सेवाभाव को दर्शाती है।

मूर्ति में हनुमानजी को श्रीराम और माता सीता के प्रति समर्पित मुद्रा में दिखाया गया है, जिससे उनकी भक्ति भावना स्पष्ट होती है।

2. मूर्ति की मुद्रा एवं विशेषताएँ:

हनुमानजी की प्रतिमा खड़ी मुद्रा में है, जो शक्ति और सेवा का प्रतीक है।

उनका मुख उज्ज्वल, तेजस्वी और भक्तिपूर्ण है।

मूर्ति पर सिंदूर का विशेष लेपन किया जाता है, जो भक्तों के लिए धार्मिक महत्व रखता है।

3. शिल्पकला और शैली:

यह मूर्ति उत्तर भारतीय मूर्तिकला परंपरा का अनुसरण करती है, जिसमें मूर्ति को भक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति और भव्यता दी जाती है।

मूर्ति में शरीर का गठन बलशाली और सुदृढ है, जो हनुमानजी के अद्भुत पराक्रम को दर्शाता है।

मूर्ति की बनावट में विशेष रूप से ध्यान दिया गया है कि यह श्रद्धालुओं में भक्ति और श्रद्धा उत्पन्न करे।

इकाई: 8 मन्दिरों में आयोजित होने वाले विविध उत्सवों का वर्णन

8.1. निर्दिष्ट मन्दिर एवं अन्य प्रसिद्ध मन्दिरों में एवं आयोजित होने वाले उत्सव एवं महोत्सवों का वार्षिक कैलेण्डर- उत्सव प्रधान भारत देश के देवालयों के साथ अन्यत्र देशों के मन्दिरों में निम्नलिखित पर्वों का आयोजन किया जाता है-

चैत्र मास

शुक्ल-प्रतिपदा	नवरात्रारम्भ/हिन्दु नववर्ष/ नवसंवत्सर
शुक्ल अष्ठमी	दुर्गाष्ठमी, नवरात्र
शुक्ल नवमी	रामनवमी
शुक्ल त्रयोदशी	महावीर जयन्ती
शुक्ल पूर्णिमा	हनुमान जन्मोत्सव
कृष्ण प्रतिपदा	धुलण्डी होली
कृष्ण अष्ठमी	शीतला सप्तमी
कृष्ण अष्ठमी	शीतलाष्टमी

वैशाख मास

शुक्ल तृतीया	अक्षय तृतीया/ आखातीज/ परशुराम जन्मोत्सव
शुक्ल पञ्चमी	श्रीआद्यशंकराचार्य जयन्ती/रामानुजाचार्य
शुक्ल अष्ठमी	देवी बगलामुखी जन्मोत्सव
शुक्ल त्रयोदशी	श्रीनृसिंह जयन्ती

ज्येष्ठ मास

शुक्ल दशमी	गंगादशहरा
शुक्ल एकादशी	निर्जला एकादशी

आषाढ मास

शुक्ल प्रतिपदा	गुप्तनवरात्रि
शुक्ल द्वितीया	श्रीजगन्नाथ रथयात्रा
शुक्ल नवमी	भडंल्या नवमी

शुक्ल एकादशी	देव शयनी एकादशी
शुक्ल पूर्णिमा	गुरू पुर्णिमा, व्यास पूजा

श्रावण मास

अमावस्या	हरियाली अमावस्या
शुक्ल तृतीयै	हरियाली तीज
शुक्ल पंचमी	नागपंचमी
कृष्ण त्रयोदशी	शिवरात्रि
श्रावण शुक्ल तृतीया	छोटी तीज/हरियाली तीज, श्रावणतीज
शुक्ल पूर्णिमा	रक्षा बन्धन, श्रावणी उपाकर्म

भाद्रपद मास

कृष्ण तृतीया	कजली तीज
कृष्ण अष्टमी	जन्माष्टमी
कृष्ण नवमी	गोगानवमी
कृष्ण द्वादशी	बच्छ बारस
शुक्ल चतुर्थी	गणेश चतुर्थी
शुक्ल पंचमी	ऋषि पंचमी
शुक्ल अष्ठमी	राधाष्ठमी
शुक्ल एकादशी	जलझुलनी एकादशी/देव डोल ग्यारस
शुक्ल चतुर्दशी	अनंत चतुर्थदशी(अण चैरस)
शुक्ल पूर्णिमा	श्राद पक्ष/पितृ पक्ष

आश्विन मास

कृष्ण	अमावस्या सर्वपितर श्राद्ध
शुक्ल प्रतिपदा	शारदीय नवरात्र प्रारम्भ
शुक्ल अष्ठमी	दुर्गाष्ठमी
शुक्ल नवमी	रामनवमी

शुक्ल दशमी दशहरा/विजया दशमी

पूर्णिमा शरद पूर्णिमा/कार्तिक स्नान प्रारम्भ

कार्तिक मास

कृष्ण चतुर्थी करवा चौथ

कृष्ण अष्ठमी अहोई अष्ठमी

कृष्ण त्रयोदशी धनतेरस

कृष्ण चतुर्दशी नरक चतुर्दशी

कृष्ण अमावस्या दीपावली(लक्ष्मी पूजन)

शुक्ल प्रतिपदा गोवर्धन पूजा/अन्नकूट

शुक्ल द्वितीया यम द्वितीया/भैया दूज/ विश्वकर्मापूजा

शुक्ल षष्ठी छठ पूजा

शुक्ल अष्ठमी गोपाष्ठमी

शुक्ल नवमी अक्षय नवमी/आवला नवमी

शुक्ल एकादशी देवोस्थान/देव प्रबोधनी/तुलसी विवाह

पूर्णिमा कार्तिक स्नान समाप्त/गुरू पर्व

मार्गशीर्ष मास

शुक्ल एकादशी गीता जयन्ती

माघ मास

मकर सूर्य संक्रमण मकर सक्रांति/ लोहड़ी

कृष्ण चतुर्थी /शकंर चतुर्थी

अमावस्या मौनी अमावस्या

शुक्ल पंचमी वसंत पचमी

फाल्गुन मास

कृष्ण त्रयोदशी महाशिवरात्रि

शुक्ल द्वितीया फुलेरा दुज

पूर्णिमा होलिका दहन

इत्यादि पर्वों के साथ- साथ लोक कल्याण हेतु वैदिक शोध एवं अनुप्रयोग के लिए सम्मेलन, शास्त्रपरीक्षा, संगोष्ठी, यज्ञादि अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1.श्री मद्वाजसनेयिमाध्यन्दिन-शुक्लयजुर्वेदसंहिता,(तत्त्वबोधिनी-हिन्दी व्याख्या सहित) डॉ. रामकृष्ण शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी

2. ब्रह्मनित्यकर्मसमुच्चय: - शास्त्री दुर्गाशङ्कर पुस्तकालय:, मुंबई (महाराष्ट्र)

3. नित्यकर्मसमुच्चय: - गीताप्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)

4. कर्मकाण्डप्रदीप: - चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी (उ. प्र.)

5. भारतीय वास्तुकला का इतिहास – कृष्णदत्त वाजपेयी (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ)

6. व्रतोद्यापनचन्द्रिका – शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पण्ड्या (सनातनधर्ममार्तण्ड)

7. आगमग्रन्थावली

9. वेदकल्पतरु- महर्षि सांदीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

10. एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ टेम्पल्स – डॉ. सी. एन. राव (तिरुमला, तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति)

राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालयों
वेद पाठशालाएँ तथा गुरु-शिष्य परम्परा इकाइयाँ

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

Vedavidya Marg, Chintaman Ganesh, Post. Jawasia, Ujjain 456006 (M.P.)

दूरभाष/Phone : (0734) 2502255, 2502254

E-mail : msrvvpujn@gmail.com, Website - www.msrvvp.ac.in